श्री वीतरागायनमः

मूर्तिमंडन

कर्त्ता

श्री १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वरजी के

पट्टधर

श्री १००८ श्रीमद्विजयकमल सूरिजी के

शिष्य

श्रीयुत मुनि लब्धिविजयजी महाराज

प्रसिद्धकर्त्ता

और

मिलने का पता—

जनरल बुकडिपो, सैद मिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

बाम्बे मशीन प्रेस, लाहौर।

प्रथमावृत्ति १०००] [मूल्य चार आने

235

श्री जैनधर्मोपदेशक

श्रीयुतमुनि लब्धि विजयजी महाराज

जन्म १९४०　　　　दीक्षा १९५९.

प्रस्तावना

श्रीमद्विजयानन्दसूरिभ्योनमः

इंहो विचक्षणशेमुषीधरा नराः पुरा किलात्र भारतक्षेत्रेऽस्मज्जैन-मण्डले निजबुद्धिबलाधस्कृतबृहस्पतयो जैनशास्त्रादिसकलसंस्कृत-विद्यापारावारपारीणाः पराजिताखिलवादिनिवहा बहवो मुनिपतयो बभूवुः । ते च सर्वे प्रायशो गृहस्थद्रव्यव्ययानपेक्षाः स्वयं जैनशा-स्त्राभ्यासोपलब्धविनयादिगुणोपेतान् नानाशास्त्रार्थग्रहणधारण-पटून्स्वशिष्यवटून् सम्यगध्याप्य दीपाः प्रतिदीपानिव स्वसमानां-स्तान्निर्वर्त्तयांचक्रिरे । अथ चैवं शिष्यप्रशिष्यपठनपाठनप्रणा-लिका कियत्कालं यावच्चलिता परन्त्वधुना कालदोषादापतितेन गरीयसा प्रमाददोषेण पानीयसिञ्चनादिसाधनविरहेणोद्यानभूरिव जीर्णतामावहति । तद्वदाचरणेऽपि तत्कालापेक्षया महान् भेदो जातः ॥ अतोऽस्यातिपवित्रस्यापि जिनोक्तधर्मस्य ह्रासो दरी-दृश्यते । ततोऽधुनापि विनिद्रीभूय हस्ताभ्यां नेत्रे उन्मील्य साव-धानीभूय प्रतिबन्धकान्व्यपनीय कुर्वन्त्वस्य जिनेश्वरोक्तधर्मस्य परां वृद्धिं प्रतिबोधयन्तु नानानिबन्धैरनेकाँल्लोकानिति स्व-प्रान्तरोत्थितविचारविवशेनाल्पमेधसाऽपि मया प्रतिबोधप्रत्ययोऽयं निबन्धो निरमायि । कोऽत्रविषय इति चेन्निशम्यताम, जैनानां तिस्र शाखाः सन्ति तास्वातिप्राचीनाः श्वेताम्बरा अर्वाचीनदिगम्बराश्च मन्यन्ते मूर्तेरुपाशनां फलवतीम् किन्तु ढूंढकनाम्ना प्रसिद्धा य शाखाऽस्ति साऽवमन्यते मूर्तेरुपाशनाम।प्रायशोत्र शाखायां भूयांस निरक्षरानरा वरीवर्तन्ते यद्येतेषु कश्चित् किञ्चिज्ज्ञो भवति तदा सर सर्वज्ञं मन्यते । इमे तीर्थङ्करदेवप्रतिकृतेरवज्ञाकारका प्रलङ्कि

शरीराः सर्वदैव मुखवस्त्रिकया मुखं बध्वाऽवतिष्ठन्ते । पञ्चनद देशीयानामेतेषामर्धदेशीया बाढं पुण्योदयवन्तोऽभवन् । यदेतेषा-मनुग्रहाय स्वयशःसुधाकरचन्द्रिकाधवलिताखिलवसुन्धरा अमेरि-केङ्गलेन्डादि नानाविदेशविस्तृतभूरिकीर्त्तयो धर्म्ममूर्तयो विजया-नन्दसूरयः प्रसिद्धख्यात्यात्मारामाह्वमुनिपतयो वादिगणलब्धवि-जया अत्र पञ्चनददेशे समभवन् । यैरेते निर्धूतकलिकल्मषैः सूरीश्वरैरनेकयुक्तिप्रयुक्तिभिर्नानासूत्रस्थमूर्त्तिपूजाविधिविधानकपा-ठैश्च प्रतिबोधिताः सन्तोऽतीव प्राचीनश्वेताम्बरमूर्त्तिपूजकशा-खायां संप्रविष्टा जाताः, परन्तु येऽवशिष्टाः सन्ति ते पक्षपात-ग्रस्ता न भवेयुः किन्तु यथा सत्यं सत्यमसत्यमसत्यं ज्ञात्वा दिव्याग-मज्ञाननेत्रप्रदातुर्महोपकर्तुर्जिनेशितुर्मूर्तिं स्वीकुर्युरेतदर्थमेतस्य पुस्तकस्य पूर्वार्द्धार्द्धे ढूंढकमतावलम्बीनां शास्त्रानुसारेणैव मूर्तेर्म-ण्डनंकृतमस्ति । पश्चात् प्रसंगवशादन्यधर्मिणां मध्ये ये मूर्त्तिमप्रम-न्यन्ते तानुद्दिश्यानेका युक्तयस्तेषामागमप्रमाणानि च दर्शितानि सन्ति । पश्चात् कीदृश्या मूर्तेः पूजनमात्मकल्याणायालंभवेदिति निर्णीतिर्विहिता । चास्य सम्यग् ज्ञाने बालो ऽप्यलंभूष्णुतामालम्बे-तैतदर्थमेवेदं पुस्तकं कल्पितनृपतिमन्त्रिसंवादरूपं निबद्धमस्ति ॥ यद्यस्य पक्षपातशून्यस्यापि पुस्तकस्य पाठात् केषांचिच्चित्तानि प्राप्नुयुर्दुःखं तदा ते ममोपरि क्षमां कुर्वीरन्नित्यभ्यर्थयते श्रीमद्विजय-कमलसूरिचरणोपासक मुनीनामनुचरोऽयं मुनिलब्धिविजयः । किमधिकेन ।

❀ श्रीवीतरागायनमः ❀

❀ मूर्ति मण्डन ❀

रागद्वेषपरित्यक्ता विज्ञाता विश्ववस्तुनः

सेव्यः सुधाशनेशानां गिरीशो ध्यायते मया ॥१॥

जिनवर! तव मूर्तिं ये न पश्यन्ति मूढाः

कुमतिमतकुभूतैः पीड़िताः पुण्यहीनाः ?

सकल सुकृतकृत्यं नैव मोक्षाय तेषां।

सुनिविड़तृणराशि श्चामिसंगाद्यथैव ॥२॥

सूरिं श्रीविजयानन्दं तं नमामि निरन्तरम्।

यस्याभूवं प्रसादेन बालोऽपि सुखरीतरः ॥३॥

प्रणम्य सद्गुरुं भक्त्या सूरिं श्रीकमलाव्हयं ?

क्रियते मूर्तिपूजाया मण्डनं दुःख खण्डनम् ॥४॥

इस संसार में जितने मतानुयायी पुरुष हैं वे सब कहते हैं कि ईश्वर परमात्मा का ध्यान इस असार संसार से पार करने वाला है, परन्तु इस बात का विचार नहीं करते कि निराकार का ध्यान कैसे होसक्ता है, क्योंकि जिसका कोई आकार ही नहीं है उसका कोई भी मनुष्यमात्र अपने हृदय में ध्यान नहीं कर सका, यथा किसी पुरुष को कहा जाए कि सीतलदास

जो कि वड़ा ही योग्य पुरुष है, और वम्बई नगर में रहता है, तुम उसका ध्यान करो, जिस पुरुष को सीतलदास का ध्यान करने के लिये कहा गया, उसने सीतलदास का कभी भी दर्शन नहीं किया है, अव वह विचारा उसका ध्यान कैसे कर सक्ता है, यदि उस समय उसको सीतलदास का चित्र दिखला कर कहा जावे कि अव तुम उसका ध्यान करो, तो उसी समय उसका चित्त से ध्यान कर सक्ता है, परन्तु केवल नाम मात्र से कार्य्य नहीं होसक्ता। यदि नाम के सुनने से ही कार्य्यसिद्ध होजाए तो आर्य्यस्कूल (पाठशाला) में अथवा ईसाईस्कूल में पढ़ने वाले लड़के अथवा कन्याओं के विवाह के समय एक दूसरे के चित्र न देखते। केवल लड़के लड़की का नाम ही पूछ लेते, परन्तु ऐसा नहीं करते हैं, जिससे विवाह करना होवे उनके चित्र आपस में अवश्य देख लेते हैं। अव ध्यान कीजिए कि लड़का लड़की तो एक प्रत्यक्ष वस्तु है, जव उनके चित्र विना कार्य्य नहीं होसक्ता,तो वह निराकार परमात्मा है उस का स्वरूप चित्र के विना अवलोकन करना अतीव दुःसाध्य है। और उसका ध्यान करना भी चित्र के विना कठिन है। यदि कोई यह कहे कि पुरुष तो स्वरूप वाला है, इसलिये इसका चित्र तो वन सक्ता है, परन्तु ईश्वर परमात्मा की तो कोई मूर्त्ति ही नहीं है, इसवास्ते उसकी मूर्त्ति नहीं होसक्ती, पुरुष मात्र को इस वात का ज्ञान होना चाहिये कि हमारे ढूंढिये भाई तो ऐसा कह ही नहीं सक्ते, क्योंकि वे भी हमारी तरह चौवीस अवतारों को साकार मानते हैं। वतलावें कि यह लोग मूर्त्तिपूजा से कैसे छूट सक्ते है। शेष जो अन्यमतानुयायी हैं

वह भी मूर्त्तिपूजा से नहीं छूट सक्ते। केवल उनका यह व्यर्थ कथन है कि हम मूर्त्ति को नहीं मानते। सो यह वार्त्ता आप को यथाकथन राजा के दृष्टान्त से अच्छी तरह मालूम हो जाएगी, यदि ईर्षा के उपनेत्र को उतारकर ध्यान करेंगे, तो अवश्य मूर्त्तिपूजा के सूक्ष्म विषय को मान लेंगे, अब दत्त-चित्त होकर सुनियेः। एक नगर में एक राजा था, वह बड़ा धर्म्मात्मा जिज्ञासु और समदर्शी था। इसके दो मन्त्री थे, उन में से एक मन्त्री तो मूर्त्तिपूजा को मानता था और दूसरा नहीं मानता था और राजा साहिब स्वयं ही मूर्त्तिपूजा किया करते थे। राजा साहिब प्रतिदिन प्रातःकाल को इष्टदेव की भक्ति पूजा करके न्यायालय में आया करते थे, इसवास्ते प्रायः कुछ विलम्ब होजाया करता था। एक दिन मूर्त्तिपूजा को न माननेवाले मन्त्री ने हाथ जोड़कर कथन किया कि महाराज ! आप बहुत विलम्ब से न्यायालय में आते हैं इसका क्या कारण है? श्रीमहाराजने प्रत्युत्तर दिया कि मैं पूजन करके आया करता हूं, इसवास्ते प्रायः देर होजाती है, तब मन्त्री ने कहा कि महाराज ! अपमान न समझिए, आप ऐसे बुद्धिमान् होकर मूर्त्तिपूजा करते हो, मूर्त्तिपूजा से कुछ भी लाभ नहीं होसक्ता (मूर्त्तिपूजा क्यों करते हैं ?) क्योंकि जड़ वस्तु को ईश्वर मानकर पूजना बुद्धिमानों का कर्त्तव्य नहीं है, अन्त में उस मन्त्री ने ऐसी २ बहुतसी बातें सुनाई कि तत्क्षण महाराज जी का ख्याल बदल गया, और मूर्त्तिपूजा करनी छोड़दी। जब दो चार दिन व्यतीत हुए तो मूर्त्तिपूजक मन्त्री ने भी यह बात सुनी कि महाराज ने मन्त्री के ऐसे मूर्त्तिपूजा निषेध

उपदेश से मूर्त्तिपूजा करनी छोड़दी है। तब एक दिन मूर्त्ति-पूजक मन्त्री ने महाराज से निवेदन किया कि स्वामिन्! हे नाथ! क्या बात है, सुना जाता है कि आपने भगवान् की मूर्त्ति का पूजन करना छोड़ दिया है। तब महाराज ने प्रत्युत्तर दिया कि हां सत्य है मैं जड़ पूजा नहीं करूंगा। जड़ वस्तु हम को कुछ नहीं दे सक्ती। मूर्त्तिपूजक मन्त्री ने कहा कि हे स्वामिन्! यदि ऐसा था तो आप पूर्व क्यों मूर्त्तिपूजन किया करते थे? महाराज ने प्रत्युत्तर दिया कि मैं पहिले अज्ञान में था, परन्तु मुझे अब दूसरा मन्त्री सन्मार्ग पर ले आया है, इसलिये मैंने यह कार्य्य छोड़ दिया है। मूर्त्तिपूजक मन्त्री ने कहा, महाराज! इस संसार में प्रायः ऐसा कोई भी मत है जो मूर्त्तिपूजन से रहित हो? और किसी न किसी दशा में वह मूर्त्तिपूजा न मानता हो? राजा साहिब ने कहा कि आप का यह कहना असत्य है, क्योंकि हमारा दूसरा मन्त्री ही मूर्त्तिपूजन को नहीं मानता? और "ढूंढिये" "यवन" "सिक्ख" "आर्य्य" "ईसाई" इत्यादि मतवाले मूर्त्तिपूजन को नहीं मानते हैं। मूर्त्तिपूजक मन्त्री ने कहा कि आपको यह भी मालूम है कि आपके दूसरे मन्त्रीजी किस मत के अनुयायी हैं? राजा ने कहा, हां! मुझे मालूम है कि वह आर्य हैं। मूर्त्तिपूजक मन्त्री ने कहा कि आपको निश्चय हो गया है कि "आर्य्य" "ढूंढिये" "सिक्ख" "यवन" "ईसाई" आदि मतानुयायी मूर्त्तिपूजन को नहीं मानते है। राजा ने कहा कि हां! मुझ को दूसरे मन्त्री ने सुनाया है कि हम लोग मूर्त्ति को नहीं मानते हैं॥ मूर्त्तिपूजक मन्त्री ने कहा कि महाराज!

आंखों और कानों में चार अंगुलियों का अन्तर है आपने मन्त्री से केवल सुना ही है परन्तु अवलोकन नहीं किया है कि सत्य है यह लोग मूर्त्तिपूजन को नहीं मानते। यदि देखलें तो आपको स्वयं ही मालूम होजाए, कि यह लोग क्या २ करते हैं। मैं आपको अच्छी तरह से दिखला सक्ता हूं कि यह लोग मूर्त्तिपूजन से कदापि दूर नहीं होसक्ते। राजा ने कहा कि हां! बड़े हर्ष की बात है कि यदि आप युक्ति प्रमाण से सिद्ध करके दिखलाओगे कि वस्तुतः ही यह उक्त धर्म्मावलम्बी मूर्त्तिपूजन को मानते हैं, तो मैं तत्क्षण मूर्त्तिपूजन करने लग जाऊँगा, और मान लूंगा। मूर्त्तिपूजक मन्त्री ने कहा कि हे स्वामिन्! बहुत अच्छा, तीसरे दिन आप एक सभा लगाएं। और 'ढूंढिये' 'सिक्ख' 'यवन' और 'आर्य्य' इन धर्म्मावलम्बिओं के चार सुयोग्य पुरुषों को बुलवाएं। राजा ने यह बात स्वीकार करली और नियत दिन आने पर सभा लगाई गई और सर्वमतानुयायी सज्जनगण एकत्रित होगये, और वे चार आदमी भी बुलाए गए। इस के अनन्तर राजा ने मूर्त्तिपूजक मन्त्री को आज्ञा दी, कि अब आप इन चार आदमियों से प्रश्न उत्तर कीजिए, और मूर्त्तिपूजा सिद्ध करिए। मन्त्री ढूंढिये भाई के सन्मुख हुए और कहा, भ्रातृगण! क्या आप मूर्त्तिपूजा को नहीं मानते हैं?

ढूंढिया—नहीं, हम जड़ मूर्त्ति को नहीं मानते, क्योंकि मूर्त्तिपूजा न तो युक्ति से सिद्ध होती है, और न ही हमारे सूत्रों में तीर्थङ्कर महाराज का मूर्त्तिपूजा के विषय में कथन है॥

मन्त्री—प्रथम मैं आपको युक्ति से सिद्ध करके दिखलाता हूं॥ लो सुनिए! क्या आप खण्ड के बने हुए १ "हस्ती, अश्व, वृषभ" आदि खिलौने खाते हो या नहीं?

ढूंढिया—देखिए साहिब! मैं साफ २ कह देता हूं कि हम खाते तो कदापि नहीं हैं, परन्तु जब से मूर्त्तिपूजा की विपदा हमारी ग्रीवा में चिमड़ने लगी—उस समय से तो हमको यही कहना पड़ता है कि हां! खालेते हैं॥

मन्त्री—वाह जी वाह! ठीक मनुष्यों के भय से आप ने अपना मन्तव्य छोड़ दिया। इन बातों को जाने दो ज़रा आप यह तो बतलाएं कि माला के कितने मणके होते हैं॥

ढूंढिया—(१०८) एकसौ आठ

मन्त्री—न्यूनाधिक क्यों नहीं होते? एकसौ आठ ही की संख्या क्यों नियत है?

ढूंढिया—मुझे मालूम नहीं, इसलिये मैं आपको अपने गुरु जी से पूछकर निवेदन कर सक्ता हूं॥

१-नोट—जिस मनुष्य को इसमें शंका हो वह किसी ढूंढिये भाई को अपने सन्मुख खण्ड का खिलौना खिलावे, वह कदापि नहीं खाएगा। यही कारण है कि वस्तुत: मूर्त्तिपूजन मानते हैं। केवल ईर्षा में आकर हठ में पडकर कुछ परमार्थ का ख्याल नहीं करते॥

मन्त्री—अच्छा जाइए परन्तु शीघ्र पधारिये, देर किसी प्रकार न हो ॥

ढूंढिया—श्रीमान् जी ! मै पूछ करके आगया हूं ॥

मन्त्री—कहिए क्या ?

ढूंढिया—गुरुजी ने कहा है कि अर्हन्त भगवन्त के द्वादश गुण, और सिद्ध महाराज के आठ, और आचार्य्यजी के छत्तीस, और उपाध्याय जी के पच्चीस, और साधु महाराज जी के सत्ताईस, इन सब का योग करने से १०८ गुण होते हैं, इसलिए मणके भी १०८ रक्खे गए हैं ॥

मन्त्री—आप कुछ समझे ?

ढूंढिया—नहीं श्रीमान् जी मैं कुछ नहीं समझा हूं ॥

मन्त्री—आप तनक ध्यान से सुनिए, मैं आपको समझाता हूं। पांच * परमेष्ठी के गुण एकसौ आठ होने से माला के मणके भी १०८ बनाकर उन में उन महात्माओं के गुणों की स्थापना (मूर्त्ति) क्यों नहीं मानी जाएगी ? जरूर ही माननी पड़ेगी ॥

ढूंढिया—यह बात तो ठीक है, भला कोई और भी युक्ति है ?

मन्त्री—लो ध्यान दीजिए, आप यह कहें आप लोगों के गुरु और गुरुणी के चित्र होते हैं ? वा नहीं ?

---

* जैनियों के मूलमन्त्र का नाम है, जो नवकार मन्त्र के नाम से प्रसिद्ध है ॥

ढूंढिया—हां साहिब, उनके तो सैंकड़ों ही चित्र मिल सक्ते हैं परन्तु हम लोक उनके केवल दर्शन ही करते हैं फल फूलादिक चढ़ाकर कच्चे पानी से स्नान कराकर हिंसा तो नहीं करते ॥

मन्त्री—अच्छा जी यदि आप लोक हिंसा नहीं करते तो आपके गुरु करते होंगे ॥

ढूंढिया—वह कैसे ?

मन्त्री—जिस समय चित्र लिया जाता है आप नहीं जानते कि कच्चे पानी से धोना पड़ता है जिस से असंख्य जीवों का नाश होता है आपके गुरु जान बूझकर चित्र खिचवाते हैं। तो वे स्वयं जानकर ही हिंसा करवाते हैं इसलिए आपके गुरु हिंसा से पृथक् नहीं होसक्ते। और हिंसा समझ कर ईश्वर परमात्मा की मूर्त्ति की पूजा से हटजाना आपकी बड़ी भारी मूर्खता है चित्र खिचवाने से मूर्त्ति का स्वीकार करना प्रत्यक्ष प्रतीत होता है ॥

बड़े शोक की बात है कि आप लोक ईश्वर परमात्मा की मूर्त्तिएं नहीं बनवाते और नाही उनके सन्मुख सिर नमाते हो किन्तु गुरु जी की मूर्त्ति के सन्मुख मस्तक झुकाते हो इन वातों से आपके गुरुओं में अभिमान भी पाया जाता है। जो कि अपने चित्र खिचवाकर "उनके सन्मुख जब आप लोक सिर झुकाते हैं" तो आपको मना नहीं करते और मूर्त्तिपूजा नहीं वतलाते क्या ईश्वर के साथ ही शत्रुता है ? और क्या वे तीर्थङ्कर महाराज से जो कि जगद्गुरु कहलाते हैं उन से भी बड़े हैं ? यदि

आप लोग पक्षपात को छोड़कर ध्यान देंगे तो मूर्तिपूजा से कदाचित भी दूर नहीं होसक्ते। भला एक वात मैं आपसे और पूछता हूं कि जिस स्थान में स्त्री की मूर्ति हो ब्रह्मचारी साधु वहां रहें वा न रहें ?

ढूंढिया—कदाचित भी वहां न रहें, क्योंकि जैनसूत्रों में लिखा है कि जिस स्थान पर स्त्री की मूर्ति हो वहां पर साधु न ठहरें इस वात को हम लोग भी मानते हैं॥

मन्त्री—अव आप तनक ध्यान तो दें कि सूत्रों में निषेध क्यों लिखा है॥

"विना प्रयोजनं मन्दोऽपि न प्रवर्त्तते"

अर्थात मूर्ख भी विना प्रयोजन कोई काम नहीं करता तो फिर सूत्रों में तो सर्वज्ञों का ज्ञान है क्यों निषेध किया है ?

ढूंढिया—सूत्रों में इसलिये निषेध किया है कि वार२ स्त्री की मूर्ति की ओर देखने से बुरे भाव उत्पन्न होते हैं॥

मन्त्री—तो फिर क्या वीतराग परमात्मा की मूर्ति देखने से शुद्धभाव नहीं उत्पन्न होंगे ? क्यों नहीं अवश्य ही उत्पन्न होंगे ? इसलिये ही सूत्रों में निषेध किया है. कि जिस दीवार पर स्त्री की मूर्ति हो साधु वा ब्रह्मचारी उसको न देखे। जैसे सूर्य्य को देखकर अपनी दृष्टि पीछे हटा ली जाती है, इसी प्रकार ही मुनि अपनी दृष्टि पीछे खैंचले, क्योंकि दीवार पर स्त्री की मूर्ति को देखकर साक्षात उस स्त्री का स्मरण होता है जिस की वह मूर्ति है॥

अब ज़रा ध्यान से देखें कि जब तुच्छ स्त्री की मूर्ति को देखकर साक्षात् स्त्री का भान होता है तो क्या तीर्थङ्कर भगवान् की मूर्ति को देखकर उनका स्मरण नहीं आएगा ? अवश्य ही स्मरण आएगा। और आप लोक अपने गुरुओं के चित्रों का सन्मान तो करते हैं, यदि उनके चित्रों का अपमान करें, तो उसको बहुत ही अयोग्य प्रतीत होता है, तो फिर क्या परमात्मा की ही मूर्ति से द्वेष है ? यदि आप यह कहेंगे कि हम अपने गुरुओं की मूर्ति का सन्मान नहीं करते हैं तो आपका यह कथन भी मिथ्या है क्योंकि यह बात तो हम उस समय मानें जब आपके गुरु की मूर्ति किसी ऐसे स्थान पर गिरी पड़ी हो जो कि अपवित्र स्थान हो, और आप न उठाएं। फिर तो हम भी मानें कि निस्सन्देह आप लोक सन्मान नहीं करते, आप लोक तो विरुद्ध इसके शीशे में जड़ा कर अपने निवासस्थान में अपने शिर के ऊपर लटकाते हैं॥

यथा सती पार्वतीजी और उदयचन्दजी और सोहनलालादि अपने गुरुओं के चित्र क्यों बनवाते हो ? क्योंकि आपकी धार्म्मिक युक्ति से मूर्ति को सन्मान करना और शिर झुकाना विरुद्ध है। क्योंकि वह भी तो स्याही और पत्र के विना और कोई वस्तु नहीं हैं॥ जैसे आप तीर्थङ्कर महाराज की मूर्तिओं को जड़ कहते हैं, इसप्रकार वे भी तो जड़ हैं ? इसलिये आप के गुरुओं को भी योग्य नहीं कि वे खिचवाएं, क्योंकि बनाने में असंख्य जीवों का नाश होता है, आप लोग मूर्ति से कुछ लाभ ही नहीं समझते हैं तो फिर आपके गुरु हिंसा समझकर रात्रि को जलतक भी नहीं रखते, परन्तु चित्रकार

के मिसाले से असंख्य जीवों की हिंसा के पाप के भागी होते हैं, सो यह बात विचारास्पद है, हठ को छोड़िए और पक्षपात से मुख मोड़िए सन्मार्ग में अनुराग जोड़िये ॥

ढूंढिया—हां साहिब ! युक्ति से तो निस्सन्देह सिद्ध हो गया परन्तु सूत्रपाठ के विना हम नहीं मान सक्ते ॥

मन्त्री—यदि जैनसूत्रों से मूर्तिपूजा सिद्ध होजाए तो आप मान जायेंगे ?

ढूंढिया—हां साहिब ! अवश्य २ ॥

मन्त्री—लो तनक ध्यान दीजिए, आवश्यक सूत्र की निर्युक्ति में लिखा है कि भरत चक्रवर्त्ती ने अष्टापद पर्वत पर जिनमन्दिर वनवाए, और चौवीस तीर्थङ्करों की मूर्तिएं विराजमान कीं ॥

ढूंढिया—श्रीमान्‌जी, तनक धैर्य्य करें, हम लोग 'निर्युक्ति' 'भाष्य' 'चूर्णी' 'टीका' इत्यादि नही मानते हम को तो सूत्र का मूलपाठ ही स्वीकार है ॥

मन्त्री—आप घवराते क्यों हो, लो सुन लीजिए, श्री भगवती सूत्र में साफ लिखा है कि निर्युक्ति को मानना चाहिए जो नहीं मानता वह सूत्र के अर्थ का शत्रु है यदि इस बात में सन्देह हो तो श्रीभगवती सूत्र का पाठ सुनलो—

पाठ यह है—

निज्जुतिमन्तव्या सुत्तत्थो खलु पढमो बीओनिज्जुति

मिस्सओ भणीओ तइओय निर्विसेसो। एस विही होइ अणुओगो ॥

इस पाठ में साफ लिखा है कि प्रथम सूत्रार्थ का कथन करना, फिर निर्युक्ति के साथ द्वितीय वार अर्थ करना, और तीसरी वार निर्विशेष अर्थात् पूरा २ अर्थ करना, अब ख्याल करना चाहिये कि इस पाठ से निर्युक्ति मानना साफ प्रतीत होता है ॥

ढूंढिया—भरत महाराज ने धर्म्म जानकर नहीं प्रत्युत बाप के मोह से मन्दिर और मूर्तियें बनवाईं ॥

मन्त्री—आपका यह कथन मिथ्या है क्योंकि भरत महाराजजी ने श्रीऋषभदेवजी की ही नहीं प्रत्युत और तेईस तीर्थङ्कर महाराजजी की मूर्तियां बनवाई थी, आप लोगों ने तो निर्युक्ति–भाष्य–टीका–और चूर्णी–यह जो पांच अङ्ग हैं उनमें से केवल एक सूत्र को ही माना शेष छोड़ दिये। इस कारण से ही आप जैनश्वेताम्बरधर्म्म के अनुयायी नहीं हैं। यथा वैदिकधर्म्म में स्वामी दयानन्दजी ने वेद के मूल पाठ को माना टीका और भाष्य को नहीं माना, और नया मत प्रकाशित किया और मुसलमान मत में जिन्होंने कुरान को माना, और हदीस को न माना वह राफ जी मत कहलाया, वैसे ही आप लोगों ने भी ठीक बात को न मानकर उलटी बात को माना और ढूंढिए कहलाए ॥

द्वितीय प्रमाण ।

श्रीसूगडाङ्ग के दूसरे श्रुतस्कन्ध की निर्युक्ति में लिखा है कि आर्द्रकुमार ने जिनमूर्ति को देखकर प्रतिबोध पाया ॥

तृतीय प्रमाण ।

श्रीमहावीरजी स्वामी के सन्मुख अंवड़ परिव्राजक ने अर्हन्त की मूर्ति को नमस्कार करना स्वीकार किया है ॥

पाठ यह है—

अंवडस्सणं परिवायगस्स नो कप्पइ अण्ण उत्थिय-एवा अण्ण उत्थिय देवयाणि वा अण्ण उत्थिय परि-ग्गाहियाइं अरिहंत चेइयाइं वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा णण्णत्थ अरिहंतेवा अरिहंतचेइआणिवा ॥

आशय इस पाठ का यह है कि मुझ को अन्य मत के देवों की मूर्ति और यदि अन्य धर्म्मावलम्बी लोगों ने अर्हन्त की मूर्ति को लेकर अपना देव मान लिया हो उनको वन्दना नमस्कार करना स्वीकार नहीं है परन्तु अर्हन्त और अर्हन्त की प्रतिमा को वन्दना नमस्कार करूंगा ॥

चतुर्थ प्रमाण ।

आनन्द श्रावक के पाठ मे प्रत्यक्ष भान होता है कि वह श्रीतीर्थंकर महावीर स्वामीजी के सन्मुख गया और उसने यह नियम स्वीकार किया कि मुझ को अन्य मत की मूर्ति को और अपने देव की मूर्ति को जो अन्यने स्वीकार कर ली हो उनको

वन्दना नमस्कार करना स्वीकार नहीं है। सो श्रीउपासक दशाङ्ग सूत्र का वह पाठ पाठकगणों के प्रतीत होने के लिये नीचे लिखा जाता है॥

पाठ यह है—

नोखलु मे भंते कप्पइ अज्जप्पभिइंचणं अन्न उथ्थियावा अन्नउथ्थिय देवयाणिवा अन्न उथ्थिय परिग्गहियाइं अरिहंतचेइयाइं वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विं अणालित्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउंवा अणुप्पदाउंवा णण्णथ्थ रायाभिओगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तिकंतारेणं कप्पइमे समणे निग्गंथे फासुएणं एसणिज्जेणं असण पाण खाइम साइमेणं वथ्थपडिग्गह कंबल पाय पुच्छणेणं पाडिहारिय पीढ फलग सेज्जा संथारएणं ओ सहभेसज्जेणय पडिलाभेमाणस्स विहरित्तए तिकट्टुइमं एयाणुरूवं अभिग्गह अभिगिण्हइं॥

पञ्चम प्रमाण।

श्रीज्ञातासूत्र में लिखा है कि जिनमन्दिरों में जाकर जिन-

प्रतिमाकी द्रौपदीने सतारह भेदी पूजा की और "नमुथ्थुणं" पढ़ा है, सो पाठ यह है—

तएणं सा दोवइ रायवर कन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ मज्जणघर मणुप्पाविसइण्हायाकय-बलिकम्मा कयकेउय मंगल पायंत्छित्ता सुद्धपावे-साइं वत्थाइं परिहियाइं मज्जणघराओ पीडणिक्खमइ जेणेव जिनघरे तेणेव उवागच्छइ जिनघर मणु-पविसइ पविसइत्ता आलोए जिणपडिमाणं पणामं करेइ लोमहत्थयं परामुसइ एवं जहा सुरिया-भो जिण पडिमाओ अच्चेई तहेव भाणियव्वं जाव धुवं डहइ धुवं डहइत्ता वामं जाणु अंचेइ अंचेइत्ता दाहिण जाणु धरणी तलंसि निहट्टु तिखुत्तो मुद्धाणं धरणीतलंसि निवेसेइ निवेसेत्ता इसिं पच्चुणमइ कर-यल जावकट्टु एवं वयासि नमोथ्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जावसंपत्ताणं वंदइ नमंसइ जिनघराओ पडिणिक्खमइ ॥

षष्ठ प्रमाण ।

श्रीमहानिशीथ सूत्र में लिखा है कि जो पुरुष जिनमंदिर बनवाएगा उसको द्वादश स्वर्ग की गति प्राप्त होगी, देखलो

इस में जिनमन्दिर बनवाने वाले को बारहवां देवलोक की गति का मिलना प्रत्यक्ष है ॥

ढूंढिया—हम महानिशीथ सूत्र को नहीं मानते ॥

मन्त्री—श्रीनन्दी सूत्र को आप मानते हो वा नहीं ?

ढूंढिया—हां साहिब ज़रूर ॥

मन्त्री—उसी श्रीनन्दी सूत्र में श्रीमहानिशीथ का नाम लिखा है, बड़े ही शोक का स्थान है कि जिस नन्दी सूत्र को आप मानते हैं, उसके मूलपाठ में श्रीमहानिशीथ का नाम लिखा है, तो फिर आप उसको क्यों नहीं मानते ? ॥

सप्तम प्रमाण ।

श्रीमहाकल्प सूत्र के पाठ से प्रत्यक्ष सिद्ध है कि साधु और श्रावक जिनमन्दिर में सदैव जावें इस पर श्रीगौतम स्वामीजी ने भगवान् से पूछा कि यदि न जाएं तो क्या दण्ड लगता है । भगवान् ने उत्तर दिया कि यदि प्रमाद के कारण न जावें तो दो व्रत का या तीन व्रत का दण्ड लगता है । फिर श्रीगौतम स्वामीने पूछा कि हे भगवन् ! क्या पौषध ब्रह्मचारी श्रावक पौषध में रहा हुआ जिनमन्दिर में जावे ? भगवान् ने उत्तर दिया कि हां गौतम ! जावें ॥ फिर श्रीगौतम स्वामीजी ने भगवान् से पूछा कि वह मन्दिर में किस लिये जावे, भगवान् ने उत्तर दिया कि ज्ञान दर्शन चारित्र के वास्ते जावे ॥ श्रीमहा कल्प सूत्र का पाठ यह है ॥

से भयवं तहारुवं समणं वा माहणं वा चेइयघरे गच्छेज्जा हंता गोयमा दिणे दिणे गच्छेज्जा । से भयवं जत्थ दिणे ण गच्छेज्जा तओ किं पायच्छित्तं हवेज्जा गोयमा पमायं पडुच्च तहारूवं समणं वा माहणं वा जो जिणघरं न गच्छेज्जा तओ छट्टं अहवा दुवालसमं पायच्छित्तं हवेज्जा । से भयवं समणो वासगस्स पोसहसालाए पोसाहिए पोसह वं भयरि । किं जिणहरं गच्छेज्जा । हंता गोयमा । गच्छेज्जा । से भयवं केणट्ठेणं गच्छेज्जा । गोयमा णाण दंसण चरणट्ठाए गच्छेज्जा । जे केई पोस-हसालाए पोसह बंभयारी जओ जिणहरे न गच्छेज्जा तओ पायच्छित्तं हवेज्जा ? गोयमा जहा साहू तहा भाणियव्वं छट्ठं अहवा दुवालसमं पायच्छित्तं हवेज्जा ॥

ढूंढिया—महोदय ! यह सूत्र भी बत्तीस सूत्रों में नहीं हैं इसलिये हम कोक नही मानते ॥

मन्त्री—रे भ्रातः ! श्रीनन्दीसूत्र के मूलपाठ में इसका नाम है वा नहीं ?

ढूंढिया—हां श्रीनन्दीसूत्र के मूलपाठ में तो अवश्य है ।

मन्त्री—तो फिर आप श्रीनन्दीसूत्र को मानते हो वा नहीं

ढूंढिया—हां मानते हैं ॥

मन्त्री—तो वड़े ही शोक की वात है कि फिर श्रीमहाकल्प सूत्र को क्यों नहीं मानते ॥

अष्टम प्रमाण ।

श्रीभगवती सूत्र में लिखा है कि तुंगीया नगरी के श्रावकों ने श्रीजिनप्रतिमा पूजी है ॥

नवम प्रमाण ।

श्रीरायपसेणीसूत्र में लिखा है कि सूर्य्याभ देवता ने श्री जिनप्रतिमा की पूजा की है ॥

दशम प्रमाण ।

श्रीउत्तराध्ययनसूत्र की निर्युक्ति अध्ययन १० में लिखा है, श्रीगौतम स्वामीजी अष्टापद की यात्रा करने को गए ॥

एकादश प्रमाण ।

श्रीआवश्यकसूत्र की निर्युक्ति में लिखा है कि वग्गुर श्रावक ने श्रीमल्लीनाथजी का मन्दिर वनवाया, इसी सूत्र में लिखा है कि फूलों से यदि जिनपूजन किया जावे तो संसार

में आवागमन नहीं होवे अर्थात् मोक्ष प्राप्त होवे,इसी सूत्रमें लिखा है कि प्रभावती श्राविका उदायन राजा की रानी ने जिनमन्दिर बनवाया । और श्रीजिनप्रतिमा के आगे नाटक किया, इसी सूत्र में लिखा है कि श्रेणिक राजा प्रतिदिन सोने के यव बनवाकर श्रीजिनप्रतिमा के आगे साथिया किया करता था ॥

द्वादश प्रमाण ।

श्री प्रथम अनुयोग में अनेक श्रावक और श्राविकाओं ने जिनमन्दिर बनवाये, और श्रीजिनप्रतिमा पूजी ऐसा वृत्तान्त है ।

ढूंढिया—प्रमाण तो महोदयजी आपने उत्तम २ दिये, परन्तु चैत्य शब्द पर सन्देह है, क्योंकि इसका अर्थ मूर्त्ति वा भगवान् की प्रतिमा नहीं होसक्ता ॥

मन्त्री—तो और क्या होसक्ता है ? ॥

ढूंढिया—इस शब्द का अर्थ साधु होता है ॥

मन्त्री—किसी कोश में भी "चैत्य" शब्द का अर्थ साधु नहीं किया है, कोश में तो "**चैत्यं जिनौकस्तद्बिम्बं चैत्यं जिनसभातरुः**" अथवा जिनमन्दिर और श्रीजिनप्रतिमा को चैत्य कहा है, और चौतराबन्ध वृक्ष का नाम चैत्य कहा है, आपने जो चैत्य शब्द का अर्थ साधु किया है, वह किसी प्रकार से भी ठीक नहीं है क्योंकि सूत्रों में तो किसी स्थान पर भी साधु शब्द को चैत्य कहकर नहीं बुलाया है, सूत्रों में तो

"निग्गंथाणवा निग्गंथिणवा" "साहुवा साहुणीवा" "भिक्खु वा भिक्खुणी वा" ऐसे लिखा है परन्तु "चैत्यं वा चैत्यानि वा"ऐसे तो किसी स्थान में भी नहीं लिखा है। यदि चैत्य शब्द का अर्थ साधु हो तो चैत्य शब्द का अर्थ स्त्री लिंग में नहीं बोला जाता है तो फिर साध्वी को क्या कहना चाहिए। श्रीमहावीर स्वामीजी के १४००० चैत्य नहीं कहे! और श्रीऋषभदेवजी महाराज के ८४००० साधु कहे हैं परन्तु ८४००० चैत्य नहीं कहे, इसी प्रकार सूत्रों में कई स्थानों पर आचार्य्यों के साथ इतने साधु हैं ऐसा तो कहा है परन्तु किसी भी स्थान में इतने चैत्य हैं ऐसे नहीं कहा, केवल आपने अपनी इच्छा से ही चैत्य शब्द का अर्थ साधु किया है, सो अत्यन्त ही मिथ्या है, जहां २ चैत्य शब्द का अर्थ साधु करते हो, सो यदि यथार्थ अर्थ के जानने वाले विद्वान् देखेंगे, तो उनको मालूम होजाएगा कि आपका किया हुआ अर्थ विभक्ति सहित वाक्ययोजना में किसी रीति से भी नहीं मिलता है और जब सर्वत्र "देवयं चेइयं" का अर्थ साधु और तीर्थंकर मानते हो तो श्रीभगवतीसूत्र में डाढ़ों के वर्णन में भगवान् ने श्रीगौतमस्वामीजी को कथन किया है कि जिनडाढ़ा देवताओं को पूजने योग्य हैं। "देवयं चेइयं पज्जु वासामि" इस स्थान में "चईयं" शब्द का क्या अर्थ करेंगे? । यदि साधु अर्थ करेंगे तो यह दृष्टान्त डाढ़ों के साथ नहीं आसक्ता, यदि "तीर्थङ्कर" ऐसा अर्थ करोगे तो डाढ़ें श्रीतीर्थङ्करदेव के तुल्य

सेवा पूजा करने योग्य होगई, जब तीर्थङ्कर महाराज की डाढ़ा सेवा पूजा के योग्य होगई, तो फिर तीर्थङ्कर भगवान् की मूर्ति क्यों पूजने योग्य नहीं होसक्ती ?। अवश्य ही पूजने योग्य है। अतः चैत्य शब्द का अर्थ जो हमने किया है वह ही ठीक है और पूर्वाचार्य्यों ने यही अर्थ किया है ॥

ढूंढिया—चैत्य शब्द का अर्थ ज्ञान भी होसक्ता है, मूर्ति अथवा प्रतिमा नहीं होसक्ता ॥

मन्त्री—यह आपका कथन भी सर्व प्रकार से मिथ्या है क्योंकि सूत्रों में ज्ञान को किसी स्थान में भी चैत्य नहीं कहा है। श्रीनन्दीजी सूत्र में तथा जिस २ सूत्र में ज्ञान का वर्णन है वहां सर्वस्थानों में ज्ञान अर्थ वाचक "नाण" शब्द लिखा है। और सूत्रों में जिस २ स्थानों में ज्ञानि मुनि महाराज का वर्णन है वहां पर "मईनाणी" "सुअनाणी" "ओहिनाणी" "मनपज्जवनाणी" "केवल नाणी" ऐसे तो कहा है। परन्तु "मइचैत्यी सुअचैत्यी" आदि २ किसी स्थान में भी नहीं कहा है. और जिस २ स्थान में भगवन्त को और साधु को "अवधिज्ञान, मनःपर्य्यवज्ञान, परम अवधिज्ञान," और "केवलज्ञान" उत्पन्न होने का वर्णन है वहां पर ज्ञान उत्पन्न हुआ, ऐसे तो कहा है, परन्तु "अवधिचैत्य" "मनः पर्य्यवचैत्य" और "केवलचैत्य" आदि ऐसा किसी स्थान में

नहीं कहा है। और सम्यक्दृष्टि श्रावक आदि को "जाति-स्मरण ज्ञान" और "अवधि ज्ञान" उत्पन्न हुआ, ऐसे तो कहा है परन्तु "अवधि चैत्य" वा "जातिस्मरणचैत्य" उत्पन्न हुआ, ऐसे किसी स्थान में भी नहीं कहा है। इससे सिद्ध होता है कि सूत्रों में किसी स्थान में भी ज्ञान को चैत्य नहीं कहा है। इसलिये आपका कहना प्रत्येक प्रकार से मिथ्या है॥ और सुनिए चमरेन्द्र के वर्णन में "अरिहन्तेवा, चेइआइयेवा" और "अणगारिएवा" ऐसा पाठ लिखा हुआ है, इस पाठ से भी स्पष्ट "चेइयं" शब्द का अर्थ "प्रतिमा" ही सिद्ध होता है, क्योंकि इस पाठ में साधु भी पृथक् और अर्हन्त भी पृथक् लिखे हुए हैं। और "चेइयं" अथवा श्रीजिनप्रतिमा का भी पृथक् वर्णन है, इसलिये इस स्थान में और कोई अर्थ नहीं होसक्ता, आप जो तीनों ही स्थान में केवल "अर्हन्त" ऐसा अर्थ करते हैं सो यह आपकी मूर्खता है आप स्वयं ही विचार लेवें क्योंकि कोई साधारण मनुष्य भी शब्दार्थ के जानने वाला कदापि नहीं कहसक्ता है; कि तीनों स्थानों में केवल अर्हन्त ही अर्थ हो सक्ता है॥

ढूंढिया—यदि उक्त वृतान्त में चैत्य शब्द से जिनप्रतिमा का अभिप्राय होवे और चमरेन्द्र प्रतिमा का शरण लेकर सुधर्म्म देवलोक तक गया होवे तो फिर नीचे के लोग और द्वीपों में शाश्वती जिनप्रतिमा थीं और ऊर्ध्वलोक में मेरुपर्वत

ऊपर और सुधर्म्मदेवलोक में और सिद्धायतन में समीप ही शाश्वती जिनप्रतिमा थी तो जिस समय शक्रेन्द्र ने चमरेन्द्र पर वज्रपात किया था उस समय वह जिनप्रतिमा की शरण क्यों न गया ? और श्रीमहावीर स्वामी की शरण क्यों गया ?

मन्त्री—यह भी आपकी चालाकी केवल भोले लोगों को ही धोखा देने के लिये है, परन्तु दत्तचित्त होकर सुनिए। इसका उत्तर प्रत्यक्ष है कि जिस किसी की जो शरण लेकर जाता है और फिर जब वह आता है तो उसी के समीप ही आता है। चमरेन्द्र श्रीमहावीर स्वामी की शरण लेकर गया था, जब शक्रेन्द्र ने इस पर वज्रपात किया तो चमरेन्द्र श्रीमहावीरजी की शरण ही आया, यदि आपका ऐसा ख्याल होवे कि मार्ग में समीप ही शाश्वती प्रतिमा और सिद्धायतन थे, चमरेन्द्र इनके समीप क्यों न गया ? सो यह ख्याल भी केवल आपकी अज्ञानता ही है, क्या मार्ग में श्रीसिमन्दरस्वामी और दूसरे विहरमान जिन विद्यमान नहीं थे ? उनकी शरण चमरेन्द्र क्यों न गया ? फिर तो आपकी मति के अनुसार विहरमान तीर्थङ्कर शरण लेने के योग्य न हुए, वाह जी ! वाह ! आपकी ऐसी बुद्धि पर शोक है ॥

ढूंढिया—वन आदि को "चैत्य" कहा जासक्ता है ॥

मन्त्री—जिस वन में यक्ष आदि का मन्दिर होता है उस वन को सूत्रों में "चैत्य" कहा है, दूसरे किसी वन को भी सूत्रों में "चैत्य" नहीं कहा है इसलिये आपका यह कथन भी मिथ्या है

ढूंढिया—यक्ष को भी चैत्य कहा है।

मन्त्री—आपका यह कहना भी असत्य है, क्योंकि जैन-सूत्रों में किसी भी स्थान में यक्ष को "चैत्य" नहीं कहा है। यदि कहा है तो आप सूत्रपाठ दिखलावें, ऐसे ही बातें बनाने से नहीं माना जाता और जो आप लोग मूर्ति नहीं मानते हैं तो आप लोगों को कोई पुस्तक न पढ़ना चाहिये क्योंकि पुस्तक भी केवल ज्ञानस्थापना है। ज्ञान एक अरूपी पदार्थ आत्मा का ज्ञान गुण है, (क) (ख) (ग) अथवा (आ) (त्र) (प) (त) आदि २ अक्षरों में स्थापना बनाई हुई है। इसलिए उनको भी जैनशास्त्रों में अक्षर श्रुतज्ञान माना है। इस वार्ता को आपलोग भी मानते हैं,। अब तनक ध्यान दीजिए कि जब पत्र और मसी जड़पदार्थों को अक्षरज्ञान माना, तो भगवान् की मूर्तिको भगवान् क्यों न मानाजाए? और यथा सन्मान और पूजाभक्ति शास्त्रकी की जाती है वैसे ही भगवान् की मूर्तिकी पूजा क्यों नहीं करते हो?॥

ढूंढिया—अक्षरको हम श्रुतज्ञान नहीं मानते हैं प्रत्युत उससे जो ज्ञान उत्पन्न होताहै उसका नाम श्रुतज्ञान है॥

मंत्री—हमारा भी तो यह कहना है कि हम भी मूर्तिको भगवान्, नहीं मानते हैं प्रत्युत उससे जिस पदार्थका ज्ञान होता है, उसको ही हम भगवान् मानते हैं, अब आपको ध्यान देना चाहिए कि आप लोग शास्त्र को पढ़ने वाले मूर्ति पूजासे कैसे दूर हो सक्ते हैं। क्योंकि समस्त शास्त्र भी जड़ स्वरूप हैं और ज्ञान की स्थापना हैं। यदि प्रत्येक भाषा में अक्षरों

की बनावट पृथक् २ भी क्यों न हो, परन्तु अक्षरों के आकार को तो फिर भी ज्ञान का कारण स्वीकार करना ही पड़ेगा। चाहे उर्दू नागरी अरबी आदि किसी भाषा के क्यों न हों, ऐसे ही मूर्तियां भी पृथक् २ श्रीऋषभदेव जी स्वामी और श्रीमहावीर जी स्वामी की हुई हैं। इन मूर्तियों को भी जिनकी यह मूर्तियां हैं, उनके ज्ञान का कारण स्वीकार करना ही पड़ेगा, क्योंकि हमने ईश्वर प्रतिमा नहीं देखी है इसलिये उसकी मूर्ति के विना ईश्वर प्रतिमा के स्वरूप का बोध हम को कदाचिव नहीं होसक्ता, जो लोग मूर्ति को नहीं मानते हैं वे लोग ईश्वर परमात्मा का ध्यान कदाचिव नहीं करसक्ते ॥

ढूंढिया—हम लोग अपने हृदय में परमात्मा की मूर्ति की स्थापना कर लेते हैं ॥

मन्त्री—वाह जी ! वाह ! आपकी कैसी समझ है, अरेभाई ! जब आप हृदय में कल्पना कर लेते हैं तो बाहिर क्यों नहीं करते ? यह तो केवल कहने की बातें हैं कि हम मूर्तिके विना ध्यान कर सक्ते हैं। मूर्ति बड़ा भारी प्रभाव रखती है, यदि मूर्ति कुछ प्रभाव नहीं रखती, तो आप लोगों को परमात्मा की मूर्ति देखकर द्वेषभाव क्यों प्रगट होता है, इससे सिद्ध होता है, मूर्ति बड़ा भारी प्रभाव रखती है ॥

द्वेषियों को द्वेपभाव और रागियों को राग आता है। यदि आपको द्वेष आता है तो हमको आनन्द आता है जब परमात्मा की मूर्ति हम को इस संसार में आनन्द देती है तो परलोक में भी

हम को आनन्ददायक होगी। आप इस संसार में परमात्मा की मूर्ति को देखकर अप्रसन्न होते हैं तो परलोक में भी अप्रसन्न रहोगे। जो लोग इस संसार में धर्म्म करने से प्रसन्न हैं वे परलोक में भी अवश्य प्रसन्न और सुखी होंगे और जो लोग इस जगत् में धर्म्म करने से रुष्ट रहते हैं वे परलोक में भी अवश्य दुःखी होंगे, इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा की मूर्ति दोनों लोक में लाभदायक है, और न मानने वालों को दुःखदायक है ॥

ढूंढिया—फिर तो भगवान् वीतराग सिद्ध न हुए जो कि सुख और दुःख देते है ॥

मन्त्री—परमात्मा की मूर्ति तो एक प्रकार का साधन है, वस्तुतः तारने वाली तो हमारी आन्तरिक भावना ही है। जो मनुष्य परमात्मा की मूर्ति को देखकर परमात्माभाव लाएगा, और इनके इतिहास पर ध्यान करेगा, और शुभ भावना को विचारेगा तो वह अवश्य ही अच्छा फल पाएगा, और जो परमात्मा की मूर्ति देखकर, द्वेष करेगा और अशुभ भावना करेगा वह अवश्य ही बुरा फल पाएगा ॥

ढूंढिया—जड वस्तु से अच्छे और बुरे भाव किस तरह आसक्ते हैं आप दृष्टान्त के साथ समझाएं ॥

मन्त्री—एक सुन्दरी स्त्री वन में अकेली जारही थी मार्ग में विचारी को सर्प ने काटा सर्प अति विषयुक्त था। इसलिये तत्क्षण विचारी देहान्त होगई। अकस्मात् इसी मार्ग से एक पथिक जारहा था, उसने मृत स्त्री के शरीर को

देखकर अपने हृदय में विचारा, कि अहो! यह कैसी सुन्दरी युवति है, परन्तु खेद यह है कि यह मृत हुई २ है, यदि जीवित होती तो मैं अवश्य इससे अपनी इच्छा पूरी करता। नम्रता से वा लोभ से वा मीठी २ बातों से मान जाती तो अच्छा होता, नहीं तो मैं हठ से भी इसको न छोड़ता, चाहे मुझे कारागार जाना ही पड़ता, ऐसा दुष्टभाव हृदय में रखता हुआ आगे चला गया। थोड़ी देर पीछे फिर इसी मार्ग में एक और पथिक का आगमन हुआ, वह कोई बड़ा धर्म्मात्मा था और सदाचारी था, इसने जब इस मृत स्त्री को देखा तो वह बड़े शोक समुद्र में डूब गया, और हृदय में विचार करने लगा कि यह संसार असार है, इस संसार में जन्म जरा मरण रोग शोक आदि प्राणियों को नित्य ही दुःख दे रहे है। इन सर्व दुःखों में से मृत्यु का दुःख अधिक है, धन्य योगीश्वर महात्मा पुरुष हैं जिन्होंने इस संसार को असार जानकर त्याग दिया। यह तो कोई बड़ी सदाचारिणी अच्छे भावों वाली मधुर-भाषिणी सत्कुलोत्पन्ना स्त्री प्रतीत होती है तथा प्रतीत होता है कि विचारी किसी आवश्यक कार्य्य के लिए जारही थी॥ हाय! कर्म्म कैसे बलवान् हैं, कि यह विचारी अकेली इस भयानक निर्जन वन में सर्प के काटने से मरगई। यदि मैं उस समय इस विचारी के समीप होता तो अवश्य इस सदाचारिणी को बचाने के लिये हृदय से यत्न करता, सम्भावना थी कि यह विचारी मृत्यु के वश न होती और अपना नित्यधर्म्म कर्म्म करके जन्म सफल करती। देखो कैसी मोहिनी मूर्ति है यह तो कोई साक्षात् देवी है, ऐसा विचार करके वह मनुष्य आगे चला गया॥ अब ध्यान करना चाहिये कि दोनों मनुष्यों ने

इस स्त्री के मृत तथा जड़ शरीर को देखकर पृथक् २ भावना के वश से पाप पुण्य का वन्धन किया। इस दृष्टान्त से सिद्ध होता है कि पाप पुण्यका फल केवल अपनी आन्तरिक भावना से ही मिलता है। भगवान् वीतराग तो न किसी को सुखी और न किसी को दुःखी करते हैं और न किसी को पुण्य और न किसी को पाप देते हैं। भगवान् तो वीतराग ही हैं। किसी वस्तु को देखकर जो भाव उत्पन्न होता है, वह वस्तु तो उस भाव के उत्पन्न होने में एक निमित्त कारण है ऐसे ही भगवान् की मूर्ति भी निमित्त कारण है, वस्तुतः तारने वाली तो हमारी आन्तरिक भावना ही है परन्तु निमित्त के विना भावना नहीं आसक्ती, इसलिये भगवान् वीतराग की मूर्ति भी बड़ा भारी निमित्त कारण है जिस किसी को जैसा निमित्त प्राप्त होता है उसको वैसे ही भाव प्रगट होजाते हैं॥

मूर्तिपूजक तो शुभभाव आने से पुण्य उत्पन्न कर लेते हैं और मूर्तिनिन्दक भगवान वीतराग की मूर्ति को देखकर भ्रकुटी को चढ़ाकर दुष्टभाव हृदय में लाने से पाप उत्पन्न कर लेते हैं अब आप तनक सांसारिक व्यापार की ओर भी दृष्टि करें, कि वह भी मूर्ति विना कदाचित् नहीं चलसक्ता॥

ढूंढिया—यह बात भी दृष्टान्त के साथ समझाएं, क्योंकि दृष्टान्त से बात हृदय में आरूढ़ होजाती है॥

मन्त्री—जब किसी मकान को नीलाम या कुड़क कराना हो या किसी गृह आदि पर दावा करना हो तो उसका चित्र बनाकर न्यायालय में देना पड़ता है, क्या न्यायालय में वृत्तान्त

सुनाकर चित्र के दिये विना कार्य्य नहीं चलसक्ता ? मान्यवर ! न्यायालय में यदि कहें कि चित्र की आवश्यकता नहीं, हम अपने मुख से सब वृत्तान्त समझा देते हैं, तो शीघ्र ही मुख पर चपेट लगती है, और धक्के भी मिलते है कि जाओ चित्र बनाकर लाओ, चित्र के विना कार्य्य का होना असम्भव है। और जब किसी को लम्बी यात्रा करनी हो तो प्रायः प्रथम ही रेलवे चित्र देख लिया जाता है कि अमुक मार्ग (लैन) कहां से पृथक् होता है अमुक नगर किस तरफ है विना चित्र के कुछ भी समझ में नहीं आता। और स्कूलों में भी लड़के चित्र के आश्रय से नगरों का वृत्तान्त समझते हैं। आपको शुद्धचित्त होकर विचार करना चाहिये कि जब सांसारिक काम भी मूर्ति के विना नहीं चलसक्ते तो उस परोक्ष परमात्मा का ध्यान मूर्त्ति के विना कैसे होसक्ता है। और बड़े शोक की बात यह है कि आप लोग अपने गुरु की समाधि को जिसमें कि केवल शिला और चूनें के विना और कुछ भी नहीं हैं, मस्तक झुकाते हैं और वहां पर प्रसाद बांटते हैं, किन्तु केवल परमात्मा वीतराग की मूर्ति के सन्मुख ही सिर झुकाना आपको व्यर्थ प्रतीत होता है, समाधि आदि का सत्कार तो किया जाता है परन्तु किस की शक्ति है जो वहां पर जूता तो लेजाए॥

ढूंढिया—क्यों साहिब ! हम गुरु की समाधि पर जूता कैसे जानेदें। और इसका अपमान हम लोग कैसे कर सक्ते हैं।

मन्त्री—वीतराग परमात्माकी मूर्ति जो कि जगद्गुरुकी मूर्ति

है, क्या इसी से द्वेष है ? आप लोग वीतराग परमात्मा की मूर्ति का सन्मान क्यों नहीं करते, और इसे नमस्कार क्यों नहीं करते और निन्दा क्यों करते हो ? यह तो केवल आपकी मूर्खता है मालूम होता है कि आपके गुरुओं का संयम भी नहीं है, क्योंकि उन में मान पाया जाता है और जिस स्थान में मान होता है वहां संयम नहीं रहसक्ता ॥

ढूंढिया—हमारे गुरुओ में मान कैसे सिद्ध होता है ।

मन्त्री—आपके गुरु अपने चित्र का सत्कार तो कराते हैं अपने चित्र का असन्मान कदापि सहार नहीं सक्ते, और आप लोग अपने गुरुओं की * समाधि की पूजा करते हैं इनके विद्यमान शिष्य ऐसी बुरी बात से आपको क्यों नहीं रोकते ?। और समाधियां बनानेके समय आप लोगों को क्यों न रोक दिया ? कि समाधि इत्यादि जड़ वस्तुओं को मत बनाओ ॥

वीतराग परमात्मा की मूर्ति के सन्मुख सिर झुकाने से तो निषेध करते हैं, प्रत्युत शपथ कराते हैं कि मन्दिरों में मत जाओ तो यह मान और ईर्षा नहीं तो और क्या है ? अब अधिक कहांतक कहा जाए आप को चाहिये कि

---

* रायकोट और जगराओं में रूपचन्द की और फरीदकोट में जीवणमल की और अम्बाले में लालचन्दजी की समाधियां विद्यमान हैं। वहां पर ढूंढिये भाई जाकर लड्डू बांटते हैं, और मस्तक झुकाते हैं । पाठकगणो ! यह मूर्तिपूजा नहीं तो और क्या है ? जिस साहिब को उक्त बात में संशय हो स्वयं देखकर निश्चयकर सकता है॥

पक्षपात छोड़ो और विद्या ग्रहण करो फिर आपको अच्छी तरह से ज्ञान होजाएगा कि मूर्तिपूजा के करने से कोई प्राणी भी शेष नहीं है । जो लोग कहते हैं कि हम मूर्तिपूजा को नहीं मानते वे लोग केवल मिथ्या बातें बनाने वाले हैं ॥

ढूंढिया भाई निरुत्तर होकर शान्त होगया । तदनन्तर मन्त्रीजी मौलवी साहिब की तरफ ध्यान देने लगे ॥

मन्त्री—क्यों जी मौलवी साहिब ! आप भी मूर्ति को नहीं मानते ?

मौलवी—अपराध क्षमा कीजिये, आपको कुछ भी समझ नहीं, ऐसे ही मन्त्री पदवी मिल गई, आप इस बात को नहीं जानते कि हमारा मत मूर्तिपूजक नहीं है । यह बात तो प्रत्यक्ष स्पष्ट है कि हम लोग हिन्दुजातिवत् मूर्तिपूजा नहीं करते । क्या पत्थर भी कभी खुदा होसक्ता है ? और कोई बुद्धिमान जड़ में परमात्मा की स्थापना कर सक्ता है ? जो आप हमारे से ऐसी बातें पूछते हैं ॥

मन्त्री—मौलवी साहिब ! इतना न घबराइये, तनक धैर्य से सुनिए, हमारे पास यह पत्र का खण्ड है इस पर खुदा लिखा है क्या आप इस पत्रखण्ड पर अपना पाद स्थापित कर सक्ते हैं ॥

मौलवी—रक्तमय आंखें करके कहने लगे, बड़े ही शोक की बात है कि आप ऐसे निर्भय होकर बुद्धि के प्रतिकूल कठोर अक्षर क्यों कहते हैं । क्या आपको परमात्मा का भय नहीं है, और मृत्युका भय नहीं है ? आप मन्त्री पद को ग्रहण

करके यह अभिमान हृदय कदापि न करिये कि प्रत्येक स्थान में हमारा आधिपत्य चल जाएगा, धर्म्म के लिए मरजाना कोई बड़ी बात नहीं ॥

मन्त्री—वाह जी ! वाह ! शोक है । मौलवी साहिब तनक ध्यान तो दो, कि मैंने पूर्व क्या कहा और अब क्या कह रहा हूं । यद्यपि मैंने आपको बुरा भला नहीं कहा, केवल यही पूछा है कि क्या आप इस पत्रखण्ड पर अपना पाद स्थापित करसक्ते हो ? जिस पर आप कपड़ों से बाहर होगये और बहुत क्रोध में आगए । अब तो आपही अपने मुख से जड़ वस्तु का सन्मान करने लगगए, यह क्या ?

मौलवी—हमने कब जड़ मूर्तिका पूजन माना है ? ॥

मन्त्री—क्या पत्र और मसी जड़ वस्तु नहीं है ?

मौलवी—हां हां ! जड़ नहीं तो और क्या हैं ।

मन्त्री--मौलवी जी यदि ऐसा ही है तो पत्र और मसी आपस में एकत्रित होकर खुदा लिखा जाता है इस में पत्र और मसी के बिना और कोई तीसरी वस्तु नहीं है न तो इस में खुदा का हाथ है और न हि इस में खुदा का पाद है तो फिर आप को क्रोध कैसे आया ? ॥

मौलवी--हां जी हां ! बस इस में परमात्मा का नाम प्रत्यक्ष लिखा हुआ है इस पर हम पाद कैसे स्थापित कर सक्ते हैं ॥

मन्त्री--जब आप पत्र और मसी के द्वारा लिखे हुए परमात्मा के नाम पर अपने प्राणों को बलिदान करने लगे हैं तो परमात्मा की मूर्ति पर क्यों बलिदान नहीं होते । और आप कैसे

कह सक्ते हो कि हम जड़ वस्तु को नही मानते। अच्छा मौलवी साहिब एक बात आप और बतलाएं कि आप लोग माला के मणके गिनते हो कि नहीं ?।

मौलवी—हां जी जरूर।

मन्त्री—माला के मणको की जो विशेष संख्या नियत है इसमें जरूर कोइ कारण है जो यही प्रतीत होता है कि अवश्य किसी न किसी बात की स्थापना है। कई लोग कहते हैं कि खुदा के नाम एक सौ एक है—इसलिये माला के मणके १०१ रक्खे गए है। अभिप्राय यह है कि कोइ न कोइ कारण विशेष संख्या नियत का अवश्य है। बस यह जो नियत कर लेना है इसी का नाम स्थापना है। बस जिसने स्थापना स्वीकार करली उसने मूर्त्ति अवश्य मानली. केवल आकार का भेद है। कोई किसी मूर्त्ति को मानता है परन्तु मूर्त्ति के बिना निर्वाह किसी का भी नही हो सक्ता। इसलिए आप भी मूर्त्ति से पृथक् कदापि नहि हो सक्ते। यह तो केवल आपकी अज्ञानता है। जब आप लकड़ी के या पत्थर के टुकड़ो मे परमात्मा के नामकी स्थापना मानते हो तो उस नामवाले की स्थापना क्यों नही मानते।

मोलवी—जबकि परमात्मा का आकार ही नही है तो इसकी मूर्त्ति कैसे बन सक्ती है।

मन्त्री—कुरानशरीफ में लिखा है कि मैने पुरुष को अपने आकार पर उत्पन्न किया। अथवा जिसने पुरुष के आकार की पूजा की उसने परमात्मा के आकार की ही पूजा की। और इससे प्रत्यक्ष सिद्ध है कि परमात्मा का आकार अवश्य है। कुरान की शिक्षा यह है कि खुदा फरिस्तो की कतार के साथ

विशाल स्थान मे आएगा और इसके सिंहासन को आठ फरिस्तो ने उठाया हुआ होगा। भला यदि परमात्मा मूर्त्तिमान् नहीं है तो इस के सिंहासन को आठ देवताओ के उठाने का क्या अर्थ है। और मूर्त्तिमान् आकार के बिना हो भी नही सक्ता। और भी आप लोगों का मानना है कि परमात्मा एकादश अर्श में सिंहासन पर बैठा हुआ है। अच्छा मौल्वी जी तनक यह तो बतलादे क्या आपने कभी हज भी किया है ?।

मौलवी—हज मे तो स्वर्ग मिलता है, फिर काबा शरीफ का हज क्यों न करना चाहिए। मैने तो दो बार किया है ॥

मन्त्री—क्योजी वहां पर क्या वस्तु है इसका तनक वर्णन करो।

मौलवी—हज मक्काशरीफ मे होता है। वहां पर एक कृष्ण पाषाण है, जिसका चुम्बन किया जाता है और काबा के कोट की प्रदक्षिणा करते है।

मन्त्री—क्या यह मूर्त्तिपूजा नही है ?।

मौलवी—कदाचित् नही।

मन्त्री—पाषाण का चुम्बन करना और प्रदक्षिणा करना और वहां जाकर सिर झुकाना मूर्त्तिपूजा ही है ॥ मौलवी साहिब, आप जो खुदा के घरका इस कदर सत्कार करते हो तो परमात्मा की प्रतिमा का सत्कार क्यो नही करते। और इसकी मूर्त्ति क्यों नहीं मानते। भला मौलवी जी यह जो ताजिये निकाले जाते है यह बुत नही तो और क्या है ?। और जो आप काबा की ओर मुख करके निमाज़ पढ़ते हो, यह भी एक प्रकार की मूर्त्तिपूजा ही है।

मोलवी—काबा तो खुदा का घर है इसलिए हम उधर मुख करते हैं।

मन्त्री—क्या शेष स्थान ईश्वर से खाली है? तो आपका यह कथन कि परमात्मा सर्व स्थान में है. उड़ जाएगा।

मोलवी—काबा की तरफ हम इसलिए मुख करते है कि काबा खुदा का घर है—इस तरफ मुख करने से दिल प्रसन्न होता है और स्थिर रहता है।

मन्त्री—काबा तो एक परोक्ष वस्तु है, जो कि दूर से दृष्टि गोचर नही होता, ईश्वर का मूर्ति को तो सन्मुख होने से और दृष्टि गोचर होने से ध्यान अधिक लगेगा, और स्थिर रहेगा। यद्यपि आप लोक जो नमाज़ पढ़ते हो यदि किसी ऐसे स्थान पर नमाज़ पढ़ा जाए कि जिस स्थान पर पुरुषो का आगे से चलने का संभव हो, तो आप लोक मध्य मे लोटा अथवा वस्त्र वा और कोई वस्तु रखलेते हैं ताकि नमाज़ में विघ्न न पड़ जाए. यह जो वस्त्र अथवा लोटा आदि स्थापना वस्तु रक्खी जाती है यह भी एक प्रकार की खुदा के लिए कैद है, मानो सम्भावना की हुई वस्तु है। मौलवी साहिब ! आप एक बड़ा दृढ़ प्रमाण और सुनिए, मूअल्लिफ़ किताब दिलबस्तान मुज़ाहिब अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि मुहम्मद साहिब ज़ोहरा अर्थात शुक्कर की पूजा करते थे। मालूम होता है कि इस कारण से ही शुक्रवार को यवन पुरुष पवित्र जानकर प्रार्थना का दिन समझते हैं। और मुहम्मद साहिब का पिता मूर्त्ति की पूजा किया करता था। मौलवी साहिब ! आपका कोई मतो ताजीया की पूजा करता है और कोई कुरान की पूजा और कोई कबर की

पूजा करता है। ऐ मौलवी साहिब ! आप तनक पक्षपात को छोड़ कर ध्यान करे तो आप लोगों का भी मूर्त्तिपूजा के विना निर्वाह कदाचित् नही होगा। मोल्वी साहिब लज्जित होकर चुप्प होगए। मन्त्री जी फिर सिक्ख साहिब की ओर ध्यान देकर कहने लगे कि ऐ भाई साहिब ! आप मूर्त्तिपूजा को क्यो नहीं मानते ?।

सिक्ख—नही जी हम जड़ मूर्त्ति को किसी प्रकार भी नही मानते।

मन्त्री—क्यो जी भला आप गुरुनानक जी और गुरु गोविन्दासिहजी की मूर्त्तिओं को देखकर प्रसन्न होते हैं वा नहीं ?।

सिक्ख—भला साहिब, गुरु की मूर्त्ति देखकर पुरुप रुष्ट कैसे होसक्ता है। हम तो प्रसन्न होते हैं, क्योकि इन्हो ने धर्म्म की रक्षा के लिए प्राणो की भी परवाह नही की है। और ऐसे ही गुरु नानक जी साहिब और गुरु गोविन्दासिंह जी जिनको कि भविष्य पुराण में भी अवतारो में माना है। भला इनके चित्र देख कर हम रुष्ट हो सक्ते हैं ?। और यदि रुष्ट होते हों तो द्रव्य खर्च करके इनके चित्र अपने मकानों मे क्यो रक्खे ?। और चित्रकारों को रुपैया देकर इनके चित्र दीवारों पर क्यो बनवाएं ?।

मन्त्री—क्यों जी आप लोक अपने गुरुओं की मूर्त्तिओ के आगे शिर झुकाते हो वा नहीं। और उनका सन्मान करते हो वा नही ?।

सिक्ख—हां जी जरूर।

मन्त्री—मूर्त्ति के सन्मुख शिर झुकाना और उसका सन्मान करना क्या मूर्त्तिपूजा नही है ?। मूर्त्ति के सन्मुख शिर झुकाना और उसका सन्मान करना मूर्त्ति पूजा ही है। कोई किसी प्रकार करता है और कोई किसी प्रकार से करता है। कोई किसी

आकार मे मानता है और कोई किसी आकार मे मानता है। परन्तु मूर्त्तिपूजा से कोई छुट नही सक्ता। आप लोक गुरुग्रन्थ-साहिब को तो उत्तम २ वस्त्रों में लपेट कर चारपाई वा चौकी पर रखते हो और इसकी समाप्ति होने पर भोग पाते हो और इसके आगे धूपादि जला कर घण्टे बजाते हो और भी कई प्रकार के राग और शब्दादि इसके सन्मुख बोलते हो और भी कई प्रकार से इसकी पूजा करते हो, तो फिर आप मूर्त्तिपूजा से कैसे छुट सक्ते हैं, क्योंकि यदि मूर्ति जड़ है तो ग्रन्थ साहिब भी कोई चैतन्य वस्तु नहीं है, वह भी तो केवल पत्र और स्याही मिलकर ही बना है कि जिसके नीचे रखने वाली चार-पाई को भी आप लोक मंजा साहिब के नाम से कहते हो, अब आपको तनक ध्यान देना चाहिए, कि आप जड़ की किस प्रकार पूजा करते हो ।

भ्रातृगण ! जब कि इसके साथ स्पर्श करने वाली वस्तु की पदवी इस प्रकार अधिक होजाती है तो परमात्मा की मूर्त्ति की पदवी सबसे अधिक क्यों न मानी जाए और इसकी पूजा क्यों न की जाए ? ।

सिक्ख—महोदय ! वह गुरुओ की वाणी है इसलिये हम इसका सन्मान और पूजा करते है ॥

मन्त्री—भाई जी ! जैसे आप लोग गुरुओं की वाणी या गुरु साहिब का सन्मान व पूजा करते हैं। इसी तरह हम भी परमात्मा की मूर्त्ति का सन्मान और पूजा करते हैं। और जब कि आप गुरुओ और उनकी वाणी की प्रशंसा करते हैं तो फिर आप को परमात्मा की मूर्त्ति की भी जो कि गुरुओ की वाणी

से भी अधिक पवित्र है, पूजा और सन्मान करना चाहिए, परन्तु आप साहिब उक्त वृत्तान्त से जड़ वस्तु की पूजा करते हुए भी मूर्त्तिपूजा पर आक्षेप करते हैं, सो अत्यन्त अयोग्य और समझ के प्रतिकूल है। अन्त में सिक्ख भाई तो निरुत्तर होकर चुप्प होगए, परन्तु एक आर्य्य साहिब मूछों पर हाथ फेर कर तत्क्षण आगे बढ़े और इनके साथ मंत्री जी के निम्न लिखे हुए प्रश्नोत्तर हुए।

मन्त्री—क्यों महाशय जी भला आप मूर्त्तिपूजा को मानते हो या नहीं।

आर्य्य—नहीं, श्रीमन्! हम तो मूर्त्ति को कदापि नहीं मानते, क्योंकि मूर्त्ति तो जड़ है और जड़ से कोई लाभ भी प्राप्त नहीं हो सक्ता है।

मन्त्री—महाशय जी! यह तो केवल कहने की मिथ्या वार्ता है कि हम मूर्त्ति को नहीं मानते हैं, यदि इर्षाभाव को छोड़ कर ध्यान किया जाए आप तो क्या कोई मत भी मूर्त्ति-पूजा से किसी प्रकार से छूट नहीं सक्ता है। महाशय जी! मुझे इस बात में सन्देह है कि आप भी ईसाइ साहिबान की तरह तो नहीं कहते, जिनका यह कथन है कि हमलोग मूर्त्तिपूजक नहीं हैं वस्तुतः तो इनका एक रोमन कैथलिक मत भली प्रकार मूर्त्ति पूजक है, क्योंकि वह हजरत मसीह और मरिअमके चित्रों को गिर्जाघर में रख कर फल फूलादि चढ़ाते और उनकी पूजा करते है और रूस के तो सर्व मतानुयायी मूर्त्तिपूजक हैं। तदनन्तर मुअल्लिफ़ किताब दिल्लबस्तान मजाहिब अपने पुस्तक में लिखते हैं कि हजरत ईसामसीह सूर्य्य की पूजा करते थे और

रविवार के दिन सूर्य्य की पूजा करते हैं। इसी वास्ते ईसाइ लोग आदित्यवार के दिनको पूजा और सन्मान का दिन मानते हैं।

आर्य्य—नहीं श्रीमन् ! नहीं, भला हम स्वामी दयानन्द के अनुयायी होकर जड़की पूजा कर सक्ते हैं ?। तीनो काल मे अर्थात् भूत भविष्यत वर्त्तमान काल में यह वार्ता असम्भव है ॥

मन्त्री—महाशय जी ! मूर्त्तिपूजा जड़पूजा मे मिश्रित नहीं है क्योंकि मूर्त्तिपूजा जड़की पूजा नहीं हो सक्ती। प्रत्युत वह तो चेतन की पूजा होती है।

आर्य्य—श्रीमन् ! यदि ऐसे हो तो आप कोई दृष्टान्त देकर भली प्रकार समझा देवें।

मन्त्री—लो जी तनक सावधान होकर सुनो, कि यदि कोई आर्य्य समाजी किसी परम विद्वान् संन्यासी की प्रत्येक प्रकार से सेवा करता है और जब संन्यासी महाराज जी समस्त दिन ज्ञान ध्यान के कारण थक जाते है, तो समाजी उनकी टांगों और शरीर आदि को अत्यन्त दबाता है, महाशय जी ! अब आप बतलाइए कि उस आर्य्य समाजी को इस तरह दिन रात्री परम भक्ति और सेवा से कुच्छ फल प्राप्त होगा या नहीं ?।

आर्य्य—अजी क्यो नही, अवश्य प्राप्त होगा, क्योंकि यदि ऐसे महात्मा की सेवा करने से भी फल प्राप्त न होगा, तो और किसकी सेवा से फल प्राप्त होगा।

मन्त्री—वाह ! जी वाह ! यह सेवा तो जड़ शरीर की थी और जड़की सेवा निष्फल होती है, तो फिर आप इस सेवा का फल कैसे मानते हो ?

आर्य्य—श्रीमन् ! विद्वान् का शरीर जड़ नहीं हो सक्ता, क्योंकि इसमें तो जीवात्मा विद्यमान है।

मन्त्री—सत्य है, शरीर मे जीवात्मा के होने से चेतन ही की सेवा मानी जाती है परन्तु सेवा तो वस्तुतः जड़शरीर की ही की जाती है, जीवात्मा की नहीं । और इसी तरह मूर्त्ति-पूजा में भी जानना चाहिए, अथवा जैसे विद्वान् के शरीर में जीवात्मा माना जाता है, वैसे ही मूर्त्ति मे भी आपके मत के अनुसार ईश्वर माना जाता है क्योकि ईश्वर सर्व व्यापक है ऐसा आप कहते हैं, इसवास्ते मूर्त्ति मे भी ईश्वर का होना अवश्य है,इससे सिद्ध हुआ कि मूर्त्तिपूजा जड़पूजा नही है, क्योंकि मूर्त्तिपूजा करते समय प्रत्येक मतके भक्त यही प्रार्थना करते हैं कि हे सच्चिदानन्द ! ज्योतिः स्वरूप ! हे ईश्वर ! हे परमात्मन् ! हे वीतराग ! हे देवेश ! हे परमब्रह्म भगवन् ! हम को अपनी कृपा करके इस संसार सागर से पार करो । और ऐसे तो कोई भी नही कहता है कि हे जड़ पत्थर ! वा अयि मूर्त्ते ! तूं हमको इस संसार समुद्र से पार कर अथवा हमारा कल्याण कर। इससे स्पष्ट है कि पूजा मूर्त्ति वाले की होती है और मूर्त्ति से तो केवल इस मूर्त्ति वाले का अनुभव होता है, वा ऐसे कह सक्ते हैं कि जैसे विद्वान् की सेवा मे विद्वान् का शरीर ही एक कारण होता है, वैसे ही मूर्त्ति वाले की सेवा वा पूजा में मूर्त्ति भी कारण होती है। और जैसा कि शरीर के विना केवल अकेले जीवात्मा की सेवा असम्भव है क्योंकि जीवात्मा निराकार वस्तु है, वैसे ही ईश्वर परमात्मा की सेवा वा पूजा भी जो कि जीवात्मा से वहुत सूक्ष्म है मूर्त्ति के विना कदाचित् नही हो सक्ती है।

आर्य्य—भला सच्चिदानन्द की सेवा मे जड़को कारण

बनाने की क्या आवश्यकता है, क्या वेदकी श्रुतिओं से मूर्त्ति के विना ईश्वर की प्रशंसा और पूजा नहीं हो सक्ती है ?।

मन्त्री—वाह ! साहिब ! क्या वेदकी श्रुतिएं चैतन्य है ? वह भी तो जड़ अक्षरों का समूह ही है । इस प्रकार से ईश्वरपूजा का कारण जड़ ही सिद्ध हुआ ।

आर्य्य—श्रीमन् ! हम उन जड़ अक्षरों मे ईश्वर ही का जाप करते हैं ।

मन्त्री—महाशय जी ! हम भी तो मूर्त्ति द्वारा ईश्वर के स्वरूप को ही स्मरण करते है । अथवा जैसे आपनें जड़ अक्षरों में ईश्वर का जपन किया ऐसे ही हमने भी ईश्वर की जड़मूर्त्ति द्वारा ईश्वर के स्वरूप को स्मरण किया. भाई साहिब ! बात तो एक ही है । आप को भी मौल्वी साहिब की तरह चक्कर खाकर स्थान पर आना ही पड़ेगा व। मूर्त्तिपूजा को मानना ही पड़ेगा ।

आर्य्य—अच्छा जी, हम वेदकी श्रुतिओं को भी न पढ़ा करेंगे और केवल अपने मुख से ईश्वर की सेवा और प्रशंसा किया करेंगे कि हे परमात्मन् ! तूं ऐसा है और कहा करेंगे कि हे परमात्मन्! तूं हमको तारदे आदि २,तो फिर इसमें क्या व्यङ्ग्य है।

मन्त्री—वाह साहिब ! आपके ऐसे कहने से तो यह सिद्ध होता है कि आप विद्या से रहित हैं क्योंकि केवल विद्या के प्रभाव से जो कुच्छ मुख से बोला जाए उसे पद कहते हैं और कई अक्षरों के मिल्ने से पद बनता है तो फिर आपने जो कहा कि ऐसा तूं है तूं ऐसा है तूं हमको तारदे आदि २ क्या पद नहीं हैं ? और क्या जड़ नही है ? सर्व पद चाहे किसी ही भाषा के क्यों न होवें, जड़ही कहलाएंगे । इससे सिद्ध हुआ कि

ईश्वर की प्रशंसा और उपासना करना जड़के विना ग्रहण करने के असम्भव है, क्योंकि यदि आप जड़के विना कारण ईश्वर की उपासना करना चाहोगे तो आपको हूं, हां, कौन, और क्यों, आदि पदों को त्याग कर मूक बनकर मोक्ष मार्ग को सिद्ध करना पड़ेगा।

आर्य्य—माना कि पद जड़ हैं परन्तु इनसे हम प्रशंसा तो सच्चिदानन्द की ही करते हैं।

मन्त्री—महाशय जी! निस्सन्देह इस प्रकार से तो हम भी मानते हैं कि मूर्त्ति जड़ पदार्थ है परन्तु इसके कारण से हम मूर्त्तिवाले ईश्वर की पूजा करते हैं वा यह कि हमारी प्रार्थना भी मूर्त्ति के कारण ईश्वर परमात्मा की ही होती है। इसलिए मूर्त्तिपूजा से आपको विरुद्ध होना योग्य नहीं है क्योंकि तत्वपदार्थ के प्राप्त करने में जड़ भी कारण हो सक्ता है। अच्छा अब आप यह बतलाइए कि यदि किसी महर्षि का शुद्धभाव से दर्शन किया जाए तो इसका फल अच्छा प्राप्त होगा कि नही?

आर्य्य—अजी क्यो नहीं, अवश्य अच्छा फल प्राप्त होगा।

मन्त्री—अब आप यह बतलाएं कि महात्मा जी के जीवात्मा का दर्शन हुआ या जड़ शरीर का? तो इसके उत्तर में आपको कहना पड़ेगा कि अरूपी जीवात्मा का तो दर्शन नही हो सक्ता, महाराजजी के शरीर का ही दर्शन हुआ। अब ध्यान करना चाहिए कि यदि मनुष्य जड़ शरीर के देखने से पुण्य उत्पन्न कर सक्ता है तो क्या परमात्मा की निर्दोष मूर्त्ति से पुण्य-बंधन नहीं कर सकेगा? अवश्य प्राप्त कर सकेगा॥

आर्य्य—श्रीमन्! महर्षि का दृष्टान्त तो मूर्त्ति से कदाचित् सम्बन्ध नहीं रखता है क्योंकि महर्षि जी के दर्शन से तो इस

वास्ते पुण्य होता है कि वह हमको शिक्षायुक्त वातों का उपदेश करते हैं जिस पर वर्ताव करने से हम बहुत कुच्छ लाभ उठा सक्ते हैं परन्तु मूर्त्ति हमको कुच्छ भी उपदेश नहीं कर सक्ती और नही कोई लाभ देसक्ती है, इसलिए मूर्त्ति का मानना ठीक नहीं है।

मन्त्री—महाशय जी! आपका यह कथन सत्य है कि महर्षि जी अच्छी बातें और अच्छा उपदेश सुनाते हैं, जिससे हमें लाभ होता है, परन्तु आप यह तो वताओ कि यदि हम महर्षि जी के कहने पर वर्ताव न करें तो क्या महर्षि जी के दर्शन से हमें कोई लाभ या फल मिल सक्ता है? कदाचित् नहीं। क्योंकि यादि महर्षि जी के कहने पर ध्यान और वर्ताव ही न किया जाएगा और इनकी वातो पर निश्चय भी नहीं किया जाएगा तो केवल महर्षि जी के मुख देखने से तो हमारा कल्याण कदापि नहीं हो सकेगा, इससे सिद्ध हुआ कि फलका प्राप्त करना वा न करना हमारे ही आधीन है। और जबकि हमको निश्चय दिलाने और वर्ताव करने से ही शिक्षा मिल सक्ती है तो फिर इसमें महर्षि जी की क्या वड़ाई हुई क्योंकि फलका प्राप्त करना हमारे ही हाथ में है, इसवास्ते हम अपनी भावना करके मूर्त्ति से भी अवश्य अच्छा फल प्राप्त कर सक्ते है। हम वीतराग ईश्वरमूर्त्ति की वीतराग आकृति को देख कर वीतराग बनने की इच्छा वा यत्न करें, और उनके गुणों का स्मरण करे, और उनके गुणो को ग्रहण करके रागद्वेष के परिणाम को रोकें, तो निस्सन्देह मूर्त्ति हमें तारने वाली होती है। आप भी इस बातको ऊपर मान चुके हैं कि यदि हम शिक्षा मानकर इस पर वर्ताव करेंगे तो हमारा ही लाभ होगा॥ और सुनिए मैं आपको एक

दृष्टान्त सुनाता हूं और यह सिद्ध करके दिखलाता हूं कि कई एक चैतन्य पुरुषों से भी हमें इतना लाभ नहीं प्राप्त हो सक्ता जितना कि जड़ वस्तु से, यथा एक मनुष्य जोकि बड़ा विद्वान् है और ऐसी अच्छी २ शिक्षाएं दे रहा है कि जिनका वर्णन करना शक्ति से बाहिर है परन्तु इसको अपने मतका उपदेश न समझने वा इसका वर्णन अपने मतके प्रतिकूल देखने से और इसके वचनों पर निश्चय न करने के कारण हम इसके उपदेश पर वर्ताव नहीं करते, प्रत्युत ऐसा ध्यान करते हैं कि ऐसे मूर्ख प्रायः उपदेशक फिरते ही हैं. अब आपही बतलाइए कि क्या इस चैतन्य से हमारा कल्याण हो सक्ता है? कदाचित् नहीं होसक्ता. और यदि हम इससे घर बैठे ही अपने मतके जड़ पुस्तकों को विचारें वा पढ़े और इसकी बातों पर अपना धर्म्मशास्त्र होनेके कारण निश्चय करके यथाकथन पर वर्ताव करें तो निस्सदेह उस जड़ पुस्तक से हमको बहुत कुछ लाभ प्राप्त होसक्ता है। अब आपही न्याय से कहें कि चैतन्य लाभ देने वाला हुआ वा जड़ शास्त्र?। आपका यह कहना 'कि जड़से कुच्छ लाभ प्राप्त नहीं होसक्ता' प्रत्युत व्यर्थ और मिथ्या सिद्ध हुआ॥

आर्य्य—हां साहिब! आपकी युक्ति तो वस्तुतः सत्य है परन्तु इसमें केवल इतना ही संदेह है कि निराकार ईश्वर का आकार कैसे बन सक्ता है।

मन्त्री—महाशय जी! आप यदि ध्यान से विचार करेंगे तो अवश्य समझ जायेंगे. कि निराकार साकार भी होसक्ता है आपके कथनानुकूल ईश्वर निराकार है परन्तु साकार वाले ओंकार शब्द में ही इसका समावेश हो जाता है और देखें आप

जो सदैव काल कहा करते हैं कि ईश्वर सर्व व्यापक है और वह परिच्छिन्न मूर्त्ति में कदापि नहीं आसक्ता है, अब सोचना चाहिए कि जब सर्वव्यापक ईश्वर एक छोटे से ओंकार शब्द में समा सक्ता है तो क्या वह मूर्त्ति में नहीं समा सक्ता ?। और जब कि एक छोटासा ओंकार शब्द सर्वव्यापक ईश्वर का बोध करा सक्ता है तो फिर मूर्त्ति क्यों न करा सकेगी ? जैसे कि निराकार ईश्वर ओंकार के स्वरूप में ही लिखा या माना जाता है, तथैव यदि पत्थर या धातुकी मूर्त्ति मे भी इसकी स्थापना मानली जाए, तो क्या हानि की बात है। ईश्वरज्ञान निस्संदेह निराकार है ऐसा भी आप मानते हैं और देखें साकार जड़ वेदों में भी ईश्वर का ज्ञान मानते हो, भला यह स्थापना नहीं तो और क्या है ?। इसलिए आपको ऐसा तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि निस्सन्देह परमात्मा के निराकार ज्ञान की साकार वेदो में स्थापना की हुई है और ईश्वर परमात्मा का ज्ञान निःसंदेह अनन्त है, परन्तु प्रमाणवाले शास्त्रों में तो इसकी स्थापना करनी ही पड़ती है, अथवा कहना पड़ता है कि वेदों में परमात्मा का ज्ञान है *। इस प्रकार यदि निराकार ईश्वर की प्रतिमा बनाली जावे तो क्या दोष है ?। और सुनिए, कि आर्य्यप्रतिनिधिसभा पंजाब के बनाए हुए जीवनचरित्र स्वामी दयानन्द जी के पृष्ठ ३५२ में लिखा हुआ हैकि ईश्वर का कोई रूप नहीं है, परन्तु जो कुच्छ इस संसार में दृष्टि गोचर हो रहा है वह इसी का ही रूप है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि मूर्त्ति भी परमात्मा का रूप है जब कि संसार की सर्व साकार वस्तु परमात्मा का रूप है तो क्या मूर्त्ति परमात्मा के रूपसे पृथक् रहगई ?।

---

* आर्य सिद्धांतानुकूल यह लिखा है, जैनों को मान्य नहीं है ॥

आर्य्य—यह वात तो अपकी सत्य है परन्तु जड़की पूजा करने से चेतन का ज्ञान कदापि नही हो सक्ता है।

मन्त्री—महाशय जी! यदि ऐसे माना जाए तो जड़ वेदों से भी चेतन ईश्वर परमात्मा का ज्ञान न होना चाहिए, परन्तु आपका विश्वास है कि वेदों से ईश्वर परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होता है इसलिए सिद्ध हुआ कि जड़ पदार्थ से चेतन का ज्ञान ज्ञात हो सक्ता है।

आर्य्य—भला यदि कोई तुम्हारी मूर्त्तिओ के भूषण चुरा कर लेजाए या मूर्त्तिको तोड़ देवे या निरादर करे तो वह मूर्त्ति इसका कुच्छ नाश नही कर सक्ती है, तो फिर हमको वह क्या लाभ पहुंचा सक्ती है?॥

मन्त्री—महाशय जी! यदि आप ऐसा मानते हो तो फिर तो आपको ईश्वर परमात्मा को भी न मानना चाहिए, क्योंकि वहुत से नास्तिक लोग ईश्वर को नही मानते, प्रत्युत भला बुरा कहते हैं कि ईश्वर कौन है और क्या वस्तु है इत्यादि २। परन्तु ईश्वर परमात्मा इनका कुछ नही कर सक्ता। इसलिए तुम्हारे विश्वास के अनुसार तो ईश्वर को भी न मानना चाहिए, और क्या ईश्वर परमात्मा पहिले न जानता था कि यह पुरुष मुझको नहीं मानेंगे, मैं इनको उत्पन्न न करूं, यदि जानता था तो मानो ईश्वर भी वहुत मूर्ख है जो जान बूझकर अपने शत्रु उत्पन्न करता है और यदि नहीं जानता था तो ईश्वर ब्रह्मज्ञानी न रहा। महाशयजी! ऐसा मानने से तो आपके ईश्वर पर कई तरह के आक्षेप होसक्ते हैं, परन्तु वस्तुतः तो केवल इतनी वात

है कि जो कुछ होता है सब अपनी ही भावना से होता है, इस लिए मूर्त्ति के भूषण चुराने या तोड़ने और मूर्त्तिका खण्डन करनेवाले को तो इसके संकल्प के अनुसार वैसा ही फल मिलता है. और ईश्वर परमात्मा के आदेश के प्रतिकूल चलने या निन्दक और न मानने वाले को इनकी भावनानुकूल वैसाही फल मिलता है।

आर्य्य—श्रीमन्! मूर्त्ति तो अपने ऊपर से मक्षिका तक भी नहीं उडा सक्ती तो दूसरों को इसकी भक्तिसे क्या लाभ हो सक्ता है?।

मंत्री—वाह! जी वाह! अच्छा सुनाया, आपके वेद भी तो जड़ हैं जोकि मूर्त्ति की तरह अपने ऊपर से मक्खी भी नहीं उडा सक्ते जिनसे कि आप परमपद मुक्तिका फल प्राप्त करना मान रहे हो, यदि कहोगे कि वेदों से तो ज्ञान प्राप्त होता है तो हम यह पूछते हैं कि क्या वेद स्वयं ज्ञान कराने में समर्थ हैं या पुरुष अपनी बुद्धि से प्राप्त कर सक्ता है? यदि कहोगे कि वेद स्वयं ही ज्ञान कराने में समर्थ हैं तो आपका यह कहना कदापि सत्य नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा ही हो तो मूर्ख पुरुष भी अपने पास वेद रखने से वेदों के ज्ञान से योग्य होजाएं. परन्तु ऐसा कदापि देखने में नहीं आता है,क्योंकि वेदों को पास रखने वाले तो सहस्त्रों हैं, परन्तु उनके समझने वाले सैंकड़ों में से केवल एक या दो ही निकलेंगे। और यदि कहोगे कि अपनी बुद्धि से ही ज्ञान प्राप्त होता है तो ऐसे तो मूर्त्ति से भी ज्ञान प्राप्त होसक्ता है, जैसाकि हाथी की मूर्त्ति देखकर उस पुरुष को जिसने कभी हाथी नहीं देखा हाथी का ज्ञान होजाता है कि हाथी

ऐसा ही होता है। और यदि केवल इसको हाथी का नामही बतलाया जावे तो इसको हाथी का ज्ञान प्राप्त न होगा कि हाथी कैसा होता है। इस दृष्टान्त से भी सिद्ध होता है कि मूर्त्ति अवश्य माननी चाहिए। और भी तुम्हारे गुरु स्वामी दयानन्दजी की बनाई हुई सत्यार्थप्रकाश मे सिद्ध होता है कि मूर्त्ति अवश्य माननी चाहिए।

आर्य्य—हां ! आपने तो यह आश्चर्ययुक्त बात सुनाई भला यह बात होसक्ती है कि हमारे स्वामी जी मूर्त्ति का मानना लिखें ? कदापि नहीं।

मन्त्री—आप क्यों व्याकुल होते हैं, यदि हमारे कहने पर आपको विश्वास नहीं आता, तो सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३७ पर देखलो। जहां अग्निहोत्र की विधि और इसके सम्बन्ध में आवश्यक सामग्री का व्याख्यान किया है। इतनी लम्बी चौड़ी चौकोन वेदी और ऐसा प्रोक्षणी पात्र और इस प्रकार का प्रणीतापात्र और इस प्रकारकी आज्यस्थाली और इस नमूनें का चिमचा बनाना चाहिए अब तनक ध्यान करो कि यदि स्वामीजी मूर्त्ति को नहीं मानते थे तो वह अपने सेवकों को चित्र के विना उक्त स्वरूपों को क्यों न समझा सके।

आर्य्य—श्रीमन् ! हम इन चित्रों को निश्चय करके वेदी इत्यादिक तो नहीं मानते, हम तो केवल इन चित्रों को असली वेदी इत्यादि के ज्ञान होने में निमित्त मानते हैं॥

मन्त्री—हम भी तो ऐसा ही कहते है कि मूर्त्ति ईश्वर तो नहीं, परन्तु ईश्वर के स्वरूपका स्मरण कराते में कारण है ?।

भी आप मे अवश्य आजाएंगे। और जब बुद्धि पत्थर होजाएगी तो आप भी पाषाणवत् जड़ होजाएंगे।

मन्त्री—अहहह! आपकी 'बुद्धि' और तर्क का क्या ही कहना है. तनक आंख तो देखो कि अतिमूर्ख भी जानता है कि स्त्री की प्रतिमा देखकर काम तो निःसंदेह उत्पन्न होता है कि वह मनुष्य स्त्री नही बनजाता है। इस प्रकार वीतरागदेव की शान्तोदान्त मूर्त्ति को देखकर शान्तोदान्त तो हो सक्ते हैं न कि जड़ बनजाते हैं। और यदि आपका भाव ऐसाही है तो फिर तो तुम भी जड़रूप ओ शब्द के देखने से जड़ बन सक्ते हो और आपने तो अनेक बार ओं शब्द को देखा होगा. परन्तु जड़ न हुए।

आर्य्य—नही जी. आपका कहना असत्य है. क्योंकि ओ शब्द के देखने से तो हमको परमात्मा स्मरण होता है॥

मन्त्री—महाशय जी! इस तरह से हमको भी मूर्त्ति के देखने से ईश्वर परमात्मा स्मरण आते है, और यह सख्यात नियम है कि कोई कार्य्य कारण के विना कदापि नही होसक्ता, इस प्रकार भाव भी कारण के विना उत्पन्न नही होसक्ता।

आर्य्य—श्रीमन्! सुनिए, मूर्त्ति के विषय मे और भी एक बड़ा भारी आ[illegible] कि मूर्त्ति तो जड़ होती है फिर उस जड़ मूर्त्ति से चेतन ईश्वर का ज्ञान कैसे होसक्ता है।

मन्त्री—महाशयजी! हम जड़मूर्त्ति से चेतन का काम नही लेते, क्योंकि परमात्मा की मूर्त्ति तो 'जोकि जड़रूप है' केवल अच्छे भावो को 'जोकि वह भी जड़रूप है' उत्पन्न करने वाली है। और शास्त्र और मूर्त्ति आपस मे जुगराफिया और चित्रवत

सम्बन्ध रखते हैं क्योंकि शास्त्र तो जुगराफिए की तरह वैराग्य भाव और ईश्वर के स्वरूप को वर्णन करने वाला और मूर्त्ति ही इसकी प्रतिमा बनाई हुई है जैसेकि शास्त्र जड़ हैं परन्तु अच्छे भावों के उत्पन्न करने वाले है, तथैव मूर्त्ति भी निस्सन्देह जड़ है परन्तु अच्छे भावों को ' जिन मे ईश्वर का ज्ञान होता है, उत्पन्न करने वाली है। और संसार में ऐसा कोई भी मत नहीं है जोकि मूर्त्ति को किसी न किसी तरह न मानता हो या पूजा न करता हो। यदि किसी मतानुयायी पुरुष आकार वाली मूर्त्ति को न मानते होंगे और उसका सन्मान न करते होंगे, तो वे वेद कुराण अंजील इत्यादि अपनी पवित्र पुस्तकों को ' जोकि आकार वाली है ' अवश्य मानते और सन्मान करते होंगे।

(नोट मन्त्री की ओर से)

यह बात सभा पर प्रकाशित हो कि आकार वाली वस्तु को मूर्त्ति के नाम से प्रख्यात कर सक्ते हैं।

आर्य्य–श्रीमन ! क्योंकि मूर्त्ति जड़ है, इसलिए इसकी उपासना से मनुष्य भी जड़ होजाएगा ॥

मन्त्री–बड़े शोक की बात है कि मैं अनेक युक्तिओं से इस बात को सिद्ध कर चुका हूं, परन्तु आप बारंबार वह ही प्रश्न करते हैं। अच्छा और भी दोचार दृष्टान्तों से आपको समझाता हूं कि जड़ पदार्थकी पूजा से मनुष्य जड़ नहिं होसक्ता, प्रत्युत इस बात के विरुद्ध जड़ पदार्थों से बहुत लाभ प्राप्त होतेहैं। देखिऐ, कि ब्राह्मी नाम बूटी एक जड़ पदार्थ है, परन्तु इसके खाने से चेतनता बढ़ती है, इससे सिद्ध हुआ कि जड़ में भी ज्ञान को बढ़ाने की शक्ति है। और देखिए कि कि ी वस्त्र जड़

आर्य्य—वेदी इत्यादि वस्तु तो साकार है इनका चित्र बनाना तो योग्य है परन्तु ईश्वर हृदय में चिन्तनीय है, इस वास्ते इसकी मूर्त्ति कैसे बन सक्ती है ?।

मन्त्री—यदि आप ईश्वर को हृदय मात्र चिन्तनीय और अरूपी मानते हैं तो ओम पदका सम्बन्ध ईश्वर के साथ न रहेगा क्योंकि ओम् पद रूपी है और ईश्वर अरूपी है तो फिर इस पदके ध्यान और उच्चारण से आपको क्या लाभ होगा ?

आर्य्य—जिस समय हम ओं पदका ध्यान और उच्चारण करते हैं उस वक्त हमारा आन्तरिक भाव जड़रूप ओं शब्द में नहीं रहता है प्रत्युत उस पदके वाच्य, ईश्वर में रहता है।

मन्त्री—जबकि आपका भाव 'वाचक' ओं पदको छोड़ कर 'वाच्य' ईश्वर में रहता है तो फिर आपको 'वाचकपद' ओं की क्या आवश्यकता है।

आर्य्य—श्रीमन ! ओं पदकी आवश्यकता इसवास्ते है कि ओं शब्द के बिना ईश्वर का ज्ञान नहीं होता।

मन्त्री—जिस प्रकार ओ पदकी स्थापना के बिना ईश्वर का ध्यान नहीं होसक्ता इसी तरह मूर्त्ति के बिना ईश्वर का ज्ञान भी नहीं होसक्ता, क्योंकि जब तक मनुष्य को केवल ज्ञान नहीं होता, तब तक मूर्त्ति के दर्शन बिना ईश्वर के स्वरूप का बोध होना असम्भव है, और यह वर्णन पीछे भी हो चुका है कि एक आदमी ने तो हाथी को देखा हुआ है और दूसरे ने केवल नाम सुना हुआ है परन्तु असली हाथी कदापि नहीं देखा है अब देखना चाहिए कि दूसरे आदमी को 'जिसने केवल हाथी का नामही सुना है' जब तक हाथी की प्रतिमा उसको न दिखाई जावे तब तक असली हाथी का ज्ञान इसको कदापि नहीं हो

सक्ता। इसीतरह हम तुमने भी ईश्वर का केवल नामही सुना है. परन्तु देखा नही. इसलिए ईश्वरमूर्त्ति के विना ईश्वर का ज्ञान कदापि नही होसक्ता। यदि आप कहेंगे कि मूर्त्ति वनाने वाले ने ईश्वर को कव और कहां देखा था तो आपका यह कहना भी ठीक नही, क्योकि नकशे को वनाने वाले ने क्या सर्व देश शहर कसवे ग्राम समुद्र नदी इत्यादि देखे भाले होते है ? कदापि नही। जिस तरह नकशा वनानेवाले ने सर्व देश इत्यादि नही देखे होते परन्तु इसके वनाए हुए नकशे के देखने वालों को सर्व देश नगर इत्यादि का ज्ञान होजाता है. इस प्रकार मूर्त्ति मे भी समझना चाहिए। यदि मूर्त्ति वनानेवाले ने ईश्वर को नही देखा है परन्तु इस मूर्त्ति के देखने से हमको ईश्वरका ज्ञान प्राप्त होता है।

आर्य्य—क्यो साहिव ! जव शास्त्रो मे ही ईश्वर का ज्ञान प्राप्त होसक्ता है तो फिर मूर्त्ति की क्या आवश्यकता है।

मन्त्री—महाशयजी ! आपका यह कहना भी व्यर्थ है। देखिये, एक आदमी को तो मुम्वइ के वृत्तान्त से ऐसे सावधान किया जाए कि इस नगर की अमुकद्वार तो पूर्व की तरफ और अमुकद्वार पश्चिम की तरफ है और अमुक गृह स्टेशन से अमुक दिशा मे है इत्यादि २ और दूसरे मनुष्य को मुम्वई नगर का चित्र भी दिखाया जाए. और वृत्तान्त भी सुनाया जाए तो आप ही कथन करिए कि मुम्वई नगर का अतिज्ञान किस मनुष्य को हुआ। अवश्य कहना पडेगा कि समाचार सुनकर चित्र देखने वाले को अधिक ज्ञान हुआ।

आर्य्य—क्यो जी ! यदि आप पत्थर की मूर्त्ति को देखने से शुभ परिणाम का आना मानते हो तो इस के जड़ता के भाव

अर्थ—इस मन्त्रका महीधर ने भी यही भाष्य किया है, इसका सीधा २ अक्षरार्थ यही है कि तीन नेत्रों वाले शिवजी की पूजा हम करते हैं सुगन्धित पुष्टिकारक पक्का खरबूजा जैसे अपनी लता से पृथक् हो जाता है उसी तरह हमको मृत्यु से बचाकर मोक्षपद की प्राप्ति कराइए। इति।

देखिए. इस श्रुति से ईश्वर शरीरधारी सिद्ध होता है क्योंकि नेत्रों का होना शरीर के विना असम्भव है, परन्तु स्वामि दयानन्द जीने त्र्यम्बकं पदका अर्थ तीन लोक की रक्षा करने वाला लिखा है. परन्तु इस पदका यह अर्थ किसी प्रकार से भी नहीं होसक्ता है। और देखिए मनुस्मृति के चतुर्थ अध्याय के १२५ श्लोक में भी लिखा है। यथा—

मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम्।
पूर्वान्ह एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम्॥

इसका यह अर्थ है शौचादि स्नान और दातन आदि का करना और देवताओं का पूजन प्रातःकाल ही करना चाहिए। देखिए यहां भी देवताओं की पूजा से मूर्त्तिपूजा सिद्ध होती है। यथा—

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्य्याद्देवर्षि पितृतर्पणम्।
देवताऽभ्यर्च्चनं चैव समिदाधान मेवच॥

अर्थ—नित्यप्रति स्नान करके प्रथम देव, ऋषि, तथा पितरोंका तर्पण अपने गृह्योक्त विधि से करे. तदनन्तर शिवादि देव प्रतिमाओं का अभ्यर्चन नाम सम्मुख पूजन करे जिसके बाद विधि पूर्वक समिदाधान कर्म्म करे। यहां देवताभ्यर्चन पदसे साक्षात

पिता गुरु आदि किसी मनुष्य का आदर सत्कार इसलिए नहीं लिया जासक्ता कि इसी मनु के द्वितीयाध्याय मे माता पिता गुरु आदि मान्यों की पूजा, आदर, सेवा, पृथक २ कही है। अग्नि-होत्र का विधान सस्त्रीक गृहस्थ के लिए है. अग्निहोत्र के स्थान में ब्रह्मचारी के लिए समिदाधान कर्म है। पाणिनीय अष्टाध्यायी अ० ५ पा० ३ सू० ९९ के अनुसार वासुदेव तथा शिवकी प्रति-माओं का नाम भी "कन्" प्रत्यय का "लुप्" होजाने पर वासुदेव तथा शिव ही होता है ॥ इसी के अनुसार देवता की प्रतिमा का नाम भी "कन्" का "लुप" होजाने से देवता ही बोला जाएगा. (वासुदेवस्य प्रतिकृतिर्वासुदेवः। शिवस्य प्रतिकृतिः शिवः। देवतायाः प्रतिकृतिर्देवता। तस्या अभ्यर्चनं देवताभ्यर्चनम्) मनु में कहे हुए "देवताभ्यर्चन" पदका स्पष्टार्थ विष्णु शिवादि देवो की प्रतिमाओ का पूजन ब्रह्मचारी को नि-यम से करना चाहिए यही सिद्ध होता है। मनु के टीकाकारो की सम्मति भी देवप्रतिमा पूजने मे स्पष्ट है। यथा—

गोविन्दराजः—(देवताना हरादीना पुष्पादिनाऽर्चनम्।

मेधातिथिः—अतः प्रतिमानामेवैतत्पूजनविधानम्।

सर्वज्ञनारायणः—देवतानामर्चनं पुष्पाद्यैः।

कूल्लूकः—प्रतिमादिषु हरिहरादिदेवपूजनम्।

मनुस्मृति के टीकाकार पं० गोविन्दराज जी कहते हैं कि यहा देवता शब्द से शिवादि देवता अभीष्ट है पुष्पादि से पूजन करना देवताभ्यर्चन कहा जाता है।

मेधातिथि कहते हैं कि यहां प्रतिमाओ ही का पूजन अभिमत है

चेतन से भी अधिक लाभ पहुंचा सक्ती है, यथा आत्मा का ज्ञान गुण है, इसलिए पदार्थोंको आत्मा ही देख सक्ता है परन्तु फिर भी आत्माकी चक्षुः इत्यादिक इन्द्रियो की सहायता की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि जब चक्षुः किसी हेतु से नाश हो जाते हैं तो पदार्थोंका दर्शन नहिं होसक्ता. अब ध्यान करना चाहिए कि पदार्थों का दर्शन क्यों नहि होता, क्या देखने वाला आत्मा विद्यमान नही. तो कहना ही पड़ेगा कि आत्मा तो अवश्य विद्यमान है परन्तु सहायक चक्षुओं के नाश होजाने से पदार्थों का दर्शन नहिं होता है अब आप ही न्याय से कहे. कि जड़का कितना प्रभाव है कि जिसके न होने के कारण आत्मा भी पदार्थों को नहिं देख सक्ता है। लो और सुनो। कि आंखें सचेतनता के होने पर भी अपने आपको नहिं देख सक्ती हैं, परन्तु जब आदर्श सन्मुख किया जावे तो शीघ्र ही आंखे अपने आपको देख लेती हैं, या ऐसे कहो कि अपनी आखें आपको नज़र आने लग पड़ती हैं, देखिए कि इस जगह हमको जड़ रूप आदर्श किस प्रकार लाभ पहुंचाता है ऐसे ही मूर्त्ति भी ईश्वर परमात्मा का बोध करा सक्ती है। और भी देखिए कि मनुष्य अपने देखने की पूर्ण शक्ति होते भी एक आध मील से ज्यादा दूर कदापि नहीं देख सकता परन्तु दूरबीन लगाकर देखा जाए तो दस २ मील से भी अधिक दूर की वस्तु दृष्टि गोचर होती है, अब देखना चाहिए कि दूरबीन एक जड़पदार्थ है परन्तु इस में कितनी शक्ति है और कितना लाभ देने वाली वस्तु है। हे प्यारे! न्याय की दृष्टि से तो मेरी इन युक्तिओं और प्रमाणों से आपको मानलेना चाहिए कि मूर्त्तिपूजा वस्तुतः ठीक है।

आर्य्य—हां साहिब ! अब मैं इस बात को तो स्वीकार करता हूं कि मूर्त्ति अवश्य माननी चाहिए और यह बात भी कि निराकार ईश्वर परमात्मा की मूर्त्ति बन सक्ती है। आपने ऊपर की युक्तिओं से ठीक २ सिद्ध करके बतला दिया है। अब प्रश्न केवल इतना ही है कि आप वेदों के मन्त्रों से (प्रमाण से) इस बात को सिद्ध करके बतलाएं, क्योंकि वेदों पर हमें अधिक विश्वास है।

मन्त्री—लो साहिब ! आपके कथनानुसार अब मैं आप को वेद की श्रुतिओं से ही यह बात सिद्ध करके दिखलाता हूं तनक ध्यान देकर सुनिए, यजुर्वेद १६ अध्याय के ४९ मन्त्र में मूर्त्तिपूजा सिद्ध है यथा—

(याते रुद्र शिवातनूरघोरापापकाशिनी)

अर्थ—हे रुद्र ! तेरा शरीर कल्याण करने वाला है सौम्य है और पुण्यफल देने वाला है।

देखो यजुर्वेद के तृतीय अध्याय के ६ मन्त्रमें ऐसा लिखा है.यथा—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्

उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥

तथाच निरुक्तम् । अ० १३ पा० ४ खण्ड—

त्रीणि अम्बकानि यस्य स त्र्यम्बको रुद्रस्तं त्र्यम्बकं यजामहे (सुगन्धिं) सुष्ठुगन्धिम् (पुष्टि वर्द्धनम्) पुष्टिकारकमिवोर्वारुकमिव फलं बन्धनादारोधनात मृत्योः सकाशान्मुञ्चस्व मां कस्मा दित्येषामितरैषा पराभवति ।

सर्वज्ञनारायण और कुल्लूकभट्ट को भी यही मत स्वीकृत है। इसलिये इन प्रमाणों से देवताओं की पूजा करने से मूर्त्ति-पूजा सिद्ध है।

आर्य्य—नहीं जी नहीं, हमारे धर्म्मशास्त्रों में तो देवताओं का अर्थ विद्वान् लिया गया है इस कारण से आपका कथन युक्तियुक्त नहीं है।

मन्त्री—महाशय जी आपको तनक ध्यान देना चाहिए कि यदि यहां देवताओं से विद्वान् का अर्थ सिद्ध होता है, तो प्रातः काल में ही देवताओं का पूजन करना चाहिए, ऐसा क्यों लिखा है। और यदि कथञ्चित इस बात को स्वीकार भी करले कि देवता का अर्थ यहां विद्वान् ही है. तो फिर भी आप जड़-पूजा से पृथक किसी प्रकार नहीं हो सक्ते हैं। क्योंकि यदि आप किसी विद्वान की पूजा करेंगे तो आत्मा को निराकार होने के कारण इस विद्वान् के शरीर की ही पूजा करेंगे, परन्तु शरीर जड़ है. इसलिए वह भी जड़ही की पूजा हुई। यदि आप कहेंगे कि शरीर में चैतन्य आत्मा के होते हुए चैतन्य शरीर के पूजने से हम जड़पूजक नहीं हो सक्ते हैं, तो ऐसे तो हम भी मूर्त्तिपूजने के कारण जड़पूजक किसी प्रकार भी नहीं हो सक्ते हैं, क्योंकि आपके मानने के अनुकूल ईश्वर सर्वव्यापक होने से मूर्त्ति में भी ईश्वर विद्यमान है. और देखिए मनुस्मृति के नवम अध्याय के २८० श्लोक में लिखा है. यथा—

कोष्ठागारयुधागारदेवतागारभेदकान्।
हस्त्यश्वरथहर्तेश्च हन्या देवाविचारयन्॥

इसका आशय यह है कि कोश कारागार देवताओं के मन्दिरों को जो तोड़ने वाले हैं अथवा वस्तुओं की चोरी करने वाले जो चोर हैं इन सबको राजा बिना सोचविचार के मारडाले॥

और देखिए कि मनुस्मृति के नवम अध्याय के २८५ श्लोक मे लिखा है। यथा—

(सङ्क्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः)

इस श्लोक में मनुजी ने राजा के लिए आदेश किया है कि नालो से उतरने के लिए जो पुल बने हुए होते हैं उनको ध्वजा-यष्टि नाम तालाब मे जो जल नापने की लकड़ी होती है उसको और देवताओं की प्रतिमा को तोड़ने वालों को राजा दण्ड देवे॥

देखिए इन स्थानों पर भी देवमन्दिर का नाम होने के कारण प्रत्यक्ष मालूम होता है कि मूर्त्तिपूजा का प्रचार मनुजी के समय मे विद्यमान था। प्रत्युत मनुजी को भी यह पक्ष स्वीकार था।

आर्य्य—महाशय ! देवमन्दिर से हम 'विद्वान का स्थान' ऐसा अर्थ लेते हैं।

मन्त्री—आपको उत्तर दिया गया है कि आप देव शब्द का अर्थ विद्वान् नही कर सक्ते हैं, और आपने यह वाक्य ' विद्वांसो वै देवाः ' शतपथब्राह्मणभाग से लिया है, और इस प्रमाण से ही देवता का अर्थ विद्वान् करते हैं परन्तु इस शत-पथ ब्राह्मणभाग नाम ग्रन्थ की ६ कंडिका में मत्स्य अवता-रादिका विस्तार से वर्णन किया गया है। यदि आप शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण से ही देवता का अर्थ विद्वान् करते हैं तो आपको छठी कंडिका को भी मानना पड़ेगा, जिसमें अवतारों

की सिद्धि का वर्णन है। जब अवतारो को मानलिया तो मूर्त्ति का स्वीकार करना स्वयं ही सिद्ध होगया . और मनुस्मृति के अध्याय ८ श्लोक २४८ मे भी प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि देवता शब्द का अर्थ प्रत्येक स्थान पर विद्वान् नही हो सक्ता है। श्लोक यह है, यथा—

"तड़ागान्युदपानानि वाप्यः प्रश्रवणानि च
सीमासन्धिपु कार्याणि देवतायतनानि च" ॥इति।

और देखिए, यजुर्वेद के १६ अध्याय के अष्टम मन्त्र में यह लिखा है ॥ यथा—

नमस्ते नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे
अथो ये अस्य सत्वानो हन्तेभ्यो करन्नमः

मन्त्रार्थ—नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे नमः अस्तु अथो अस्य ये सत्वानः तेभ्यः अहम् नमः अकरम. इति मंत्रार्थः)।

भावार्थ—नीलकण्ठ सहस्रनेत्र से सब जगत् को देखने वाले इन्द्ररूप वा विराट्रूप सेचन मे समर्थ पर्जन्यरूप वा वरुणरूप रुद्र के निमित्त नमस्कार हो और इस रुद्र देवता के जो अनुचर देवता हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं। देखिए इस श्रुति में "हज़ार नेत्रवाला और श्याम ग्रीवा वाला" यह लेख ईश्वर के शरीर धारण करने को प्रत्यक्ष सिद्ध कर रहा है क्योंकि शरीर के विना नेत्र वा कण्ठ किसी प्रकार से नही हो सक्ते हैं।

और देखिए, यजुर्वेद के १६ अध्याय के नवम मन्त्र मे ऐसा लिखा है। यथा—

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयो रार्त्न्यो ज्याम् ।
याश्चतेहस्त इषवः पराता भगवो वप ॥

मंत्रार्थ—भगवः धन्वनः उभयोः आर्त्न्योः ज्याम् त्वम प्र-मुञ्च च याः ते हस्ते इषवः ताः परावप ।

भाषार्थ–हे षडैश्वर्यसम्पन्न ! भगवन् ! आप धनुष की दोनों कोटिओं मे स्थित ज्या को दूर करो (उतारलो) और जो आपके हाथ में वाण हैं उनको दूर त्याग दो, हमारे निमित्त सौम्य मूर्त्ति हो जाओ ॥

इससे भी ईश्वर शरीरधारी सिद्ध होता है, क्योंकि शरीर के विना हस्त और पादो का होना असम्भव है ।

और देखिए, यजुर्वेद के १६ अध्याय के २९ मन्त्र में ऐसे लिखा है । यथा—

'नमः कपर्दिने च' इत्यादि

अर्थ–इस मन्त्र मे कपर्दी शब्द है उसका अर्थ 'जटाजूट धारी' को नमस्कार हो ऐसे किया है । अब सोचना चाहिए कि जटा शिर के विना नही होसक्ती, इससे भी ईश्वर शरीर धारी सिद्ध हुआ ॥

और देखिए, यजुर्वेद के ३२ आध्याय में ऐसा लिखा है । यथा—

एषोहदेवः प्रदिशोऽनुसर्वाः पूर्वोहजातः सउगर्भे अन्तः । सएव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जना स्तिष्ठति सर्वतो मुखः ॥

अर्थ–यह जो पूर्वोक्त पुरुष ईश्वर सब दिशा विदिशाओं मे

नानारूप धारण कर ठहरा हुआ है वही पाहिले सृष्टि के आरम्भ मे हिरण्यगर्भ रूपसे उत्पन्न हुआ और वही गर्भ में भीतर आया वही उत्पन्न हुआ और वही उत्पन्न होगा जो कि सबके भीतर अन्तःकरणों में ठहरा हुआ है और जो नाना रूप धारण करके सब ओर मुखो वाला होरहा है ॥ और भी देखो, यथा—

आयो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषिकृणुषे पुरूणि, अथर्व० ५।१।१।२ ॥

अर्थ—हे ईश्वर! जिन आपने प्रथम सृष्टि के आरम्भ मे धर्म्मों का स्थापन किया, उन्हीं आपने बहुत से वपु नाम शरीर अवतार रूपसे धारण किये हैं। वपु नाम शरीर का संस्कृत मे प्रसिद्ध है। तथा—

'एह्यश्मानमातिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः'।

अथर्व० २।१२।४।

अर्थ—हे ईश्वर! तुम आओ और इस पत्थर की मूर्त्ति मे स्थित होओ और यह पत्थर की मूर्त्ति तुम्हारा तनू नाम शरीर बनजाए अर्थात् शरीर मे जीवात्मा के तुल्य इस मूर्त्ति में ठहरो इसकी पुष्टि मे उपनिषद् तथा ब्राह्मणभागादि के सैकड़ों प्रमाण मिल सक्ते है ॥

और देखिए यजुर्वेद के १३ अध्याय के ४० मन्त्र में यह लिखा है। यथा—

"आदित्यं गर्भं पयसा समङ्‌धि सहस्रस्यप्रतिमां विश्वरूपम् । परिवृङ्‌धि हरसामाभिमं ऽ स्थाः । शतायुषं कृणुहि चीयमानः" ॥

इसका अर्थ यह है। सहस्रनाम वाला जो परमेश्वर है उसी की स्वर्णादि धातुओ मे बनाई हुई मूर्त्ति को प्रथम अग्नि में डाल कर इसका मल दूर करना चाहिए. इसके बाद दूधमे उस परमात्मा की मूर्त्ति को धोना और शुद्ध करना चाहिए.क्योंकि शुद्ध और स्थापना की हुई मूर्त्ति पुरुष को दीर्घायुः* और बड़ा प्रतापी बना सक्ती है। देखो, इस वेदपाठ मे प्रत्यक्ष मूर्त्तिपूजा सिद्ध होती है। यदि अब भी आप न माने.तो क्या किया जाए। फिर तो केवल आपका हठ ही है। लो और सुनिए कि सामवेद के षड्विंश प्रपाठक के दशम खण्ड में लिखा है, कि—

"यदा देवतायतनानि कम्पन्ते दैवताः प्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्ति खिद्यन्ति उन्मीलन्ति निमीलन्ति" ॥

इस श्रुति का आशय यह है कि जिस राजा के राज्य में वा जिस समय मे शयनावस्था में वा जागृतावस्था में ऐसा प्रतीत हो कि देवमन्दिर कांपते हैं तो देखने वाले को जरूर ही कोई कष्ट मिलेगा अथवा देवता की मूर्त्ति रोती नाचती अङ्गहीन होती आंखों को खोलती वा वन्दकरती दृष्टिगोचर हो तो समझना चाहिए, शत्रु की ओर से कोई कष्ट जरूर होगा। देखिए, इस श्रुति मे भी प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि मूर्त्तिपूजा पूर्व भी थी, और वेदों मे भी है। इसलिये आप मूर्त्तिपूजा को अयोग्य किसी प्रकार नहीं कह सक्ते हैं। और एक बात यह भी है कि आप लोक वेदी आदि बनाकर अग्नि में घृतादि उत्तम २ वस्तुएं डाल कर जलाते है (वा होम करते है) इस पर हम यह कह सक्ते है

---

* यह वैदिक धर्मीयों का मानना है ॥

कि आप अग्निपूजक हो अथवा अग्नि को ईश्वर की स्थापना समझ कर पूजते हो ॥

आर्य्य—नहीं जी नहीं, हम स्थापना नहीं समझते, हमारा तो यह ख्याल है कि होम करने से वायु शुद्ध होजाती है, जिसकी वासना जगत मे दूर २ तक पहुंच जाती है और अशुद्ध वायु पवित्र होजाती है और लोक बीमारी से बच जाते हैं ॥

मन्त्री—महाशय जी ! यदि ऐसा ही है तो वेदी इत्यादि बनाने की क्या आवश्यकता है और अमुक वर्ण हो और वेदी द्वादशाङ्गुल प्रमाण हो इन बातों से क्या अभिप्राय है। सीधे साधे चूल्हे में ही इन वस्तुओं को जला लेवे सुगन्धि स्वयमेव विस्तृत हो जाएगी। और यदि यह बात स्वीकार भी की जावे, तो फिर आप अग्निहोत्र करते समय श्रुतिआं और मन्त्र इत्यादि क्यों पढ़ा करते है। वायु तो ऐसे ही वेदी में घृत इत्यादि वस्तु डाल कर जलाने से शुद्ध होसक्ती है। बस इससे मालूम होता है कि जैसे हमलोग ईश्वर की प्रशंसा में श्लोक पढ़ते है और मूर्त्ति की पूजा करते हैं वैसे ही आप भी ईश्वर की प्रशंसा में श्रुतिआं पढ़ते और अग्निपूजा करते हैं और होम इत्यादि करने से तो आप लोग अग्निपूजक सिद्ध होते हैं। भेद केवल इतना है कि हमारी पूजा की सामग्री तो किसी पुजारी आदि के काम आजाती है और आपकी सामग्री भस्म होकर मृतिका में मिल जाती है। महाशय जी ! मूर्त्तिपूजा से आप लोग कदापि छूट नहीं सक्के, और देखिए, कि आपके स्वामी दयानन्द जी के बनाए हुए सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि मनको दृढ़ करने के लिये पृष्ठकी अस्थि में ध्यान लगाना चाहिए। अब सभा को ध्यान

करना चाहिए कि भला परमात्मा की मूर्त्ति में ध्यान लगाने मे तो परमात्मा में प्रीति आएगी, और उनके गुणों का स्मरण होगा परन्तु सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास में "शौचसन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर" इस योगसूत्र का अर्थ करते समय स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि जब मनुष्य उपासना करना चाहे तो एकान्त देश में आशन लगाकर बैठे और प्राणायाम की रीति से वाह्य इन्द्रियों को रोक मनको नाभिदेश मे रोके वा हृदय कण्ठ नेत्र शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़में मनको स्थिर करे। इस "हड्डीपूजा"से तो"मूर्त्तिपूजा"अच्छी है, पृष्ठकी अस्थि देखने वाले को या इसमें ध्यान लगाने वाले को क्या लाभ होसक्ता है। इस वास्ते आपको पृष्ठकी अस्थि को छोड़कर परमात्मा की मूर्त्ति मे ध्यान लगाना चाहिए, क्योंकि तुम्हारी पृष्ठकी अस्थि मे परमात्मा की मूर्त्ति सहस्रगुण लाभ पहुंचाने वाली है॥

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि मूर्तिपूजा सर्वथा वेदानुकूल है तथा वैदिकमतानुयायिओं का आन्हिक कर्त्तव्य है अब एक दो उदाहरण इस बातके और दिखाए जाते हैं कि तुम लोगों के पूर्वज प्रतिमा पूजनको ठीक मानते रहे और उन्हों ने तदनुकूल आचरण भी किया॥ महाभारत के आदिपर्व मे एक उपाख्यान उस समय का मिलता है जबकि हस्तिनापुर मे द्रोणाचार्य्य जी पाण्डव और कौरवों के अस्त्रशिक्षा देरहे थे उनकी प्रशंसा सुन कर प्रतिदिन अनेक क्षत्रिय उनके पास धनुर्वेदविद्या सीखने के लिए आते थे।

'ततो निषादराजस्य हिरण्यधनुषः सुतः।
एकलव्यो महाराज द्रोणमभ्याजगाम ह॥

न स तं प्रतिजग्राह नैषादिरिति चिन्तयन् ।
शिष्यं धनुषि धर्मज्ञस्तेषामेवान्ववेक्षया ॥
स तु द्रोणस्य शिरसा पादौ गृह्य परन्तपः ।
अरण्यमनुसम्प्राप्य कृत्वा द्रोणं महीमयम् ॥
तस्मिन्नाचार्य्य वृत्तिञ्च परमामास्थितस्तदा ।
इष्वस्त्रेयोगामतस्थे परं नियममास्थितः ॥
परयाश्रद्धयोपेतो योगेन परमेण च ।
विमोक्षादानसन्धाने लघुत्वं परमाप सः ॥३५॥

महाभारत आदिपर्व अध्याय १३४

इस अध्याय के ३० श्लोकों में एकलव्यके चरित्र का वर्णन है, जब द्रोणाचार्य्य की प्रशंसा दूर २ तक फैल गई तो एक दिन निषदराज हिरण्यधनुषका पुत्र एकलव्य द्रोण के पास धनुर्विद्या सीखने के लिए आया, द्रोणाचार्य्य ने उसे शूद्र जान कर धनुर्वेद की शिक्षा न दी, तब वह मनमें द्रोणाचार्य्य को गुरु मान कर और उनके चरणों को छूकर वनमें चला गया, और वहां द्रोणाचार्य्य की एक मट्टी की मूर्त्ति बनाकर उसके सामने धनुर्विद्या सीखने लगा, श्रद्धा की अधिकता और चित्तकी एकाग्रता के कारण वह थोड़े ही दिनों में धनुर्विद्या में अच्छा निपुण होगया, एक बार द्रोणाचार्य्य के साथ कौरव और पाण्डव मृगया खेलने के लिए वनमें गए, उनमें से किसी के साथ एक कुत्ता भी गया था, वह कुत्ता इधर उधर घूमता हुआ वहां जा निकला कि जहां एकलव्य धनुर्विद्या सीख रहे थे, कुत्ता उनको देखकर भौंकने लगा, तब एकलव्य ने सात तीर ऐसे मारे कि जिनसे कुत्ते

का मुंह बन्द होगया, वह कुत्ता पाण्डवो के पास आया, तब पाण्डवों ने इस अद्भुत रीति से मारने वाले को तलाश किया तो क्या देखते हैं कि एकलव्य सामने एक मट्टी की मूर्त्ति रक्खे हुए धनुर्विद्या सीख रहे हैं। अर्जुन ने पूछा महाशय! आप कौन हैं, एकलव्य ने अपना नाम पता बताया और कहा कि हम द्रोणाचार्य्य के शिष्य है, अर्जुन द्रोणाचार्य्य के पास गये और कहा कि महाराज! आपने तो कहा था कि हमारे शिष्यों में धनुर्विद्या मे तुम्ही सबके अग्रणी होगे परन्तु एकलव्य को आपने मुझसे भी अच्छी शिक्षा दी है, द्रोणाचार्य्य ने कहा कि मै तो किसी एकलव्य को नहीं जानता,चलो देखे कौन है। वहां जानेपर एकलव्य ने द्रोणाचार्य्य का पदरज मस्तक पर धारण किया और कहा कि आपकी मूर्त्ति की पूजा से ही मुझे यह योग्यता प्राप्त हुई है, आप मेरे गुरु हैं, द्रोणाचार्य्य ने कहा कि फिर तो हमारी गुरुदक्षिणा दो, एकलव्य ने कहा कि आप जो कहे सो मैं देने को तय्यार हूं, तब द्रोणाचार्य्य ने उसका अंगूठा दक्षिणा में मांगा, और एकलव्य ने देदिया, अंगूठा न रहने के कारण फिर एकलव्य में वैसी लाघवता न रही और द्रोणाचार्य्य की प्रतिज्ञा भी पूर्ण हुई। देखिए पाठक! द्रोणाचार्य्य की मूर्त्ति पूजने से ही एकलव्य अर्जुन से धनुर्विद्या मे उत्कृष्ठ होगया तो फिर जो लोग अहरहः देवपूजन करेंगे उनके कौनसे मनोरथ सिद्ध न होगे? अथ वाल्मीकीय रामायण (जिसे संस्कृत*साहित्यमें आदि काव्य होने की महिमा प्राप्त है) को भी देख लीजिए;जिस समय मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी रावणादि राक्षसों को मारकर पुष्पक

* यह वैदिक लोकों का कहना है न कि हमारा॥

विमान द्वारा लौटे. तो सीता जी को उन्हों ने उन २ स्थानों का पता बताया कि जहां २ पर वे सीता जी के वियोग में घूमते रहे थे, रामचन्द्र जी कहते हैं कि—

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ।
यत्र सागरमुत्तीर्य तां रात्रिमुषिता वयम् ॥
एष सेतुर्मया बद्धः सागरे लवणार्णवे ।
तव हेतो विशालाक्षि ! नलसेतुः सुदुष्करः ॥
पश्य सागरमक्षोभ्यं वैदेहि वरुणालयम् ।
अपारमिव गर्जन्तं शङ्खशुक्ति समाकुलम् ॥
हिरण्यनाभं शैलेन्द्रं काञ्चनं पश्य मैथिलि ! ।
विश्रामार्थं हनुमतो भित्त्वा सागरमुत्थितम् ।
एतत्कुक्षौ समुद्रस्य स्कन्धावार निवेशनम् ॥
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ।
एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ॥
सेतुबन्धं इतिख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ।
एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम् ॥ इति

रामचन्द्र जी कहते हैं कि हे सीते ! यह समुद्र का तीर्थ दीखता है जिस जगह हमने एक रात्रि को निवास किया था, यह जो सेतु दीखता है इसे नल की सहायता से तुझे प्राप्त करने के लिए हमने बांधा था। जरा समुद्र को तो देखो जो वरुण देव का घर है कैसी ऊंची२ लहरें उठरही है जिसका ओर छोर नहीं दीखता, नाना प्रकार के जल जन्तुओं से भरे तथा शंख

और सीपों से युक्त इस समुद्र में से निकले हुए सुवर्णमय इस पर्वत को देख जो हनूमान् के विश्रामार्थ सागर के वक्षःस्थल को फाड़ कर उत्पन्न हुआ है। यहीं पर विभु व्यापक महादेवजी ने हमें वरदान दिया था, यह जो महात्मा समुद्र का तीर्थ दीखता है इसका नाम सेतुबन्ध है और तीनो लोकों से पूजित है, यह परम पवित्र है और महा पातकों को नाश करने वाला है। इन अन्तिम दो श्लोको पर वाल्मीकिय रामायण के टीकाकार लिखते हैं कि:—

"सेतोर्निर्विघ्नता सिद्ध्यै समुद्रप्रसादानन्तरं शिवस्थापनं रामेण कृतमिति गम्यते कूर्मपुराणे रामचरिते तु अत्रस्थाने स्पष्टमेव लिङ्गस्थापनमुक्तं त्वत्स्थापितलिङ्गदर्शनेन ब्रह्महत्यादिपापक्षयो भविष्यतीति महादेववरदानं च स्पष्टमेवोक्तं, सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहतीतिस्मृतेः" ॥

अर्थ—सेतु निर्विघ्न पूर्ण हो एतदर्थ रामचन्द्र जी ने समुद्रप्रसादानन्तर यहां शिवमूर्त्ति का स्थापन और पूजन किया था, कूर्म पुराण में तो इस प्रकरण में रामचन्द्रजी का लिङ्गस्थापन और महादेवजी के वरदान का स्पष्ट वर्णन है तुम्हारे स्थापित किए हुए शिवमूर्त्ति के दर्शन करने से ब्रह्महत्यादि पापो का क्षय होगा, और स्मृति में भी लिखा है कि समुद्र का सेतुदर्शन करने से महा पातकों का नाश होता है ॥

महाराज दशरथ जिस समय रामचन्द्रजी के वियोग में मृत्युङ्गत होगए थे तब भरतजी अपनी ननसाल मे थे उनके बुलाने के लिए दूत भेजा गया जिस समय भरतजी अयोध्या के समीप पहुंचे तो उन्होंने अनेक अशुभ चिन्ह देखे, वे कहते हैं, यथा—

" देवागाराणि शून्यानि नभान्तीह यथा पुरा ।
देवतार्चाः प्रविद्धाश्च यज्ञगोष्ठास्तथैव च " ॥

अर्थ—देवताओं के मन्दिर शून्य दीखते हैं, आज वैसे शोभायमान नहीं हैं जैसे पहिले थे । प्रतिमाएं पूजारहित होरही हैं उनके ऊपर धूप दीप पुष्पादि चढ़े नहीं देखते. यज्ञों के स्थान भी यज्ञकार्य से रहित हैं ।

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट प्रकट है कि मूर्त्तिपूजा सनातन है. त्रेता और द्वापर तक का जो वृत्तान्त मिलता है उनसे स्पष्ट प्रकट है कि यहां बड़े २ देवमन्दिर थे. जिनमें नित्य पूजा होती थी. विद्वान पूजा करते थे ॥

हे महाशय जी! अब तनक ध्यान तो करो कि जब आप के पूर्वज प्रतिमा का पूजन करके प्रत्यक्ष फल प्राप्त कर गए हैं, यदि आप भी मूर्त्तिपूजन करेंगे तो आपकी अभिलाषा अवश्य ही पूर्ण तो होजाएगी और निःसन्देह सुख प्राप्त होगा ॥

आर्य्य—भला श्रीमन ! मूर्त्ति को तो इसप्रकार से " कि इससे ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान होता है " मानलिया, और यह समझकर परमात्मा की मूर्त्ति का सन्मान भी किया और सिर भी झुकाया. परन्तु इस पर फूल फल केसर चंदन धूप दीप चावल और मिठाई इत्यादि चढाने से क्या तुम्हारा लाभ है ? ।

मन्त्री—महाशय जी ! क्योंकि वस्तु के विना भाव नहीं आसक्ता. इस वास्ते भगवान की मूर्त्ति पर उक्त वस्तुओं का चढ़ाना आवश्यक है और ऊपर लिखित वस्तु चढ़ाते समय नीचे लिखी हुई भावना करते हैं ॥

(फूल)

फूल चढ़ाते हुए हम यह भावना करते हैं कि हे भगवन् ! हे प्रभो ! यह जो फूल हैं सो कामदेव के वाण (काम को बढ़ाने वाले) हैं ॥ मै अनादि काल से सांसारिक विषयों में मग्न हूं । आप वीतराग है और आपने कामदेव को भी पराजय किया है इसलिए मैं इन फूलो को आपके लिए अर्पण करके प्रार्थना करता हूं कि यह कामदेव के वाण "जो अनादि काल से हमको क्लेश दे रहे हैं" तेरी भक्ति के कारण से आगामि काल मे दुःख न देवें ॥

(फल)

महाशयजी ! भगवान् की मूर्त्ति के आगे अच्छे और पवित्र फल रखकर हम यह प्रार्थना करते है कि हे भगवन् ! मुझको आपकी भक्ति का मुक्तिरूप फल प्राप्त हो ॥

(केशर वा चन्दन)

इनके चढ़ाते समय हम यह भावना करते हैं कि हे भगवन् ! जैसे इनकी वासना से दुर्गन्धि की वासना दूर होती है तथैव तुम्हारी भक्ति की वासना से हमारी भी बुरी अनादि वासना दूर होवे ॥

(धूप)

महाशय ! धूपदेने के समय हम ऐसी भावना करते हैं कि हे प्रभो ! जैसे धूप अग्नि मे जलता है ऐसे ही आपकी भक्ति से मेरे सब पाप जलकर भस्म होजाएं, और जैसे धूम्रकी ऊर्द्ध गति होती है वैसे ही मेरी भी ऊर्द्ध गति होवे अर्थात् मोक्ष होवे ।

(दीपक)

महाशयजी ! निस्सन्देह हम घृतसे दीपक जलाकर परमात्मा की मूर्त्ति के आगे रखते हैं और हम इससे यह भावना करते

हैं कि हे भगवन् ! जैसे दीपक के प्रकाश होने से अन्धकार दूर होजाता है ऐसे ही आपकी भक्ति से मेरे घट में भी केवलज्ञान (ब्रह्मज्ञान) रूप प्रकाश होवे, ताकि मेरा भी सर्व अज्ञानरूपी अन्धकार दूर होजाय ।

(चावल)

जिनको संस्कृत में अक्षत कहते है, इनके चढ़ाते समय यह भावना करते हैं कि हे भगवन् ! हे प्रभो ! अक्षतपूजा से मुझे भी अक्षत सुखकी प्राप्ति हो ॥

(मिठाई पकवान इत्यादि)

इनसे हम यह भावना करते हैं कि हे भगवन ! मैं अनादि-काल से ही इन पदार्थों का भक्षण करता आया हूं परन्तु मेरी तृप्ति न हुई । इसलिए मैं यह पकान्न आपको अर्पण करके प्रार्थना करता हूं कि मैं भी आपकी भक्ति के प्रताप द्वारा इन पदार्थों से तृप्त होजाऊं (मुक्त होजाऊं) ऐ प्यारे ! हम अपने दूसरे हिन्दु भाइयों की तरह भोग नहीं लगाते हैं, प्रत्युत हम उपर लिखित आठ प्रकार की वस्तु को (कि जिन में संसार के सर्व प्रकार के हर्षकी सामग्री आजाती है. और जिनको हम अष्टद्रव्य कहते हैं) भगवान की मूर्त्ति के आगे अर्पण करके ऊपर लिखित भावना करते हैं, अथवा यह प्रार्थना करते हैं कि हे परमात्मन! मुझको संसार की यह अष्ट वस्तु मोहवश कर रही है और आपने तो इन सबका त्याग किया है. आप वीतराग हो, इसलिये आपकी भक्ति से मेरी भी इनसे मुक्ति हो, और मुझको भी आप जैसा शान्ति और वैराग्यभाव उत्पन्न हो, महाशयजी ! आपको विदित हो कि यह पकान्न इत्यादि हम ईश्वर को भक्षण

कराने के लिए नही चढ़ाते, प्रत्युत अपनी भलाई और लाभ के वास्ते तय्यार करते हैं और ईश्वर की मूर्त्ति के आगे रखके केवल यह प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन ! जिस तरह आपने इनका त्याग किया है मुझको भी इनसे छुड़ाकर आप मुक्ति का दान देवें।

आर्य्य—क्यो जी ! आपका तो यह कहना है कि ईश्वर कुच्छ नही कर सक्ता और न कुच्छ देसक्ता है तो फिर यह प्रार्थना करनी कि हे ईश्वर ! हमको मुक्ति दे, हमारे दुःख दूरकर इत्यादि २ व्यर्थ है।

मन्त्री—महाशय जी ! ईश्वर परमात्मा तो वस्तुतः वीतराग है प्रशंसा करने मे प्रसन्न और निन्दा करने से क्रोधित नही होता, न किसी को कुच्छ देता है, न किसी से कुच्छ लेता है, प्रत्युत यह तो केवल अपने भावही का फल है। प्रत्यक्ष सिद्ध है कि बुरी भावना से हमारी आत्मा मलीन होजाती है, और शुभ भावना से हमारे अशुभ कर्म्मों का नाश होता है, और क्योंकि ईश्वर का प्रशंसा करने या ध्यान करने से हमारे हृदय में शुद्ध परिणाम आजाता है, और उनका हमे अच्छा फल मिलता है, इसवास्ते जानना चाहिये कि ईश्वर ने ही हमे यह फल दिया है, क्योंकि ईश्वरनिमित्त होने से ही हमारा भाव अच्छा होता है जिसके कारण से हमे श्रेष्ठ फल मिलता है। अब प्रत्यक्ष सिद्ध है कि यह श्रेष्ठ फल ईश्वर के निमित्त होने के कारण से हमको मिला न कि ऐसे इस तरह कहा जासक्ता है कि यह फल ईश्वर ने हमको दिया है, परन्तु तुम्हारे ईश्वर की तरह 'कि परमात्मा ही सब कुच्छ देता है' कदापि नही माना जासक्ता। और न ही हम ऐसा मान सक्ते हैं क्योंकि ईश्वर तो वीतराग है उसे लेने

देने की कुच्छ आवश्यकता नहीं है और यदि उसे भी लेने देने की इच्छा है तो वह ईश्वर ही न रहा, तब तो हमारे जैसा ही समझना चाहिए। पाठकगणो! इस विषय में पुस्तक बढने के भय से अधिक नहीं लिखा गया, यदि आपको सम्यक् प्रकार से इस विषय के देखने की इच्छा हो तो आप चिकागु प्रश्नोत्तर जसवंतराय जैनी लाहौर से मंगवा कर पढ़ लेवें। *

प्यारे! एक बात मैं आपको और सुनाता हूं जो कि समझने के लायक है। स्मरण रखना चाहिए कि जिनेश्वरदेव की मूर्त्ति सर्वदैव रागद्वेष से पृथक् और अन्य मतानुयायियों की मूर्त्तियां सांसारिकविषययुक्त प्रतीत होती हैं। किसी की मूर्त्ति के साथ स्त्री की मूर्त्ति है किसी मूर्त्ति के हाथ में शस्त्र है, किसी मूर्त्तिके हाथ में जपमाला है किसी के हाथ में कमण्डलु है और कोई मूर्त्ति वृषभ पर आरूढ़ है और कोई गरूड़पर इत्यादि २॥ यह सर्व अवस्थाएं सांसारिक हैं जिनमें मनुष्य अनादिकाल से ही प्रतिदिन लगा हुआ है, परन्तु मुक्ति का मार्ग सांसारिक दशाओं में लगे रहने से नहीं मिलता है प्रत्युत इसके त्याग करने से प्राप्त होसक्ता है इसलिए मसीद और मन्दिर इत्यादि में सांसारिक दशा के प्रतिकूल समझाने वाले कारणों का होना आवश्यक है। जैसा कि जैनियों की मूर्त्तियां शान्त दान्त निर्विकारी स्त्रीरहित निःस्पृह किसी वाहन के विना रागद्वेष से विमुख होती हैं। यह बात निसंदेह है जैसा कोई होता है उसकी मूर्त्ति भी वैसी ही हुआ करती है। विचार करना चाहिए कि जिसकी मूर्त्ति के साथ स्त्री की

---

* इसी को जीरा जिला फिरोजपुर निवासी लाला गोधा मल के पुत्र लाला नत्थूराम जी ने उर्दू में छपवाया है, उर्दू जानने वाले महाशय उन से मंगवा कर पढ़ सकते हैं।

प्रतिमा होगी, वह अवश्य कामी होगा। वर्तमान काल मे कोई मनुष्य गुरु या पीर होकर स्त्रीको साथ रक्खे तो लोग उसको अच्छा नहीं समझते, तो फिर जो परमेश्वर होकर स्त्री को साथ रक्खे, वह वीतराग परमात्मा कैसे होसक्ता है? कदापि नहीं हो सक्ता। और जिसके पास चक्र, त्रिशूल, धनुर्वाण या तलवार, इत्यादि शस्त्र होवें तो उसको अवश्य कोई भय होगा, या किसी शत्रुके मारने का संकल्प होगा, क्योंकि आवश्यकता के विना शस्त्रो का रखना मूर्खता को प्रकट करता है। यदि कहा जावे कि वह अपने महत्व के लिए शस्त्र रक्खता है तो वह ईश्वर परमात्मा ही नहीं होसक्ता, क्योंकि ईश्वर को दर्शनीयता और महत्व की कोई आवश्यकता नहीं, इसवास्ते जिस मूर्त्ति के साथ शस्त्र होवें वह पूजने के अयोग्य होती है। और जिसके हाथ में माला है, वह किसी दूसरे का जप करता होगा परन्तु ईश्वर परमात्मा ने किसका करना था, क्योंकि इससे वड़ा और कोई है नहीं, कि जिसका यह जपन करे, इसवास्ते माला वाली मूर्त्ति भी पूजने के योग्य नहीं है। और जिस मूर्त्तिका वाहन है, वह भी दूसरों को दुःख दाता है, परन्तु ईश्वर परमात्मा तो दयालु है किसी को दुःख नहीं देता। इसवास्ते सवारी वाली मूर्त्ति भी पूजने के योग्य नहीं। जिसके पास कमण्डलु है वह भी किसी आवश्यकता के लिए होगा परन्तु ईश्वर परमात्मा को किसी की आवश्यकता नहीं है, इसलिए कमण्डलु वाली मूर्त्ति भी पूजने के योग्य नहीं। अन्त में सभा को विचार करना चाहिए, क्या ऐसी मूर्त्तियां देखकर ध्यान और भाव शुद्ध होसक्ते हैं? कदापि नहीं। प्रत्युत ऐसी मूर्त्तियां देखकर तो उनके इतिहास स्मरण

हो जाते हैं, कि उन्हो ने ……………………ऐसे २ काम किए थे, इसलिए ऐसी मूर्त्तियो की पूजा कदापि न करनी चाहिए, पूजा के लिए शान्त दान्त निर्विकार मूर्त्ति होनी चाहिए। अब हम नीचे एक श्लोक लिखते हैं बुद्धिमान् इस श्लोक से सर्व परिणाम निकाल सक्ते हैं। यथा—

"स्त्रीसंगः काममाचष्टे द्वेषं चायुधसंग्रहः।
व्यामोहं चाक्षसूत्रादि रशौचञ्च कमण्डलुः" ॥

अर्थ इसका यह है–कि स्त्री की जो सङ्गति है सो काम का चिन्ह है और जो शस्त्र हैं सो द्वेषका चिन्ह हैं, और जो जपमाला है सो व्यमोह का चिन्ह है, और जो कमण्डलु है सो अपवित्रता का चिन्ह है, इसलिए मूर्त्ति शान्त दान्त निर्विकार होनी चाहिए, और ऐसी ही स्वीकार करने योग्य है। ऐसी अच्छी बातको सुनकर और निरुत्तर होकर सब चुप होगए। मन्त्री राजा की तरफ देखकर बोला, कि महाराज! अबतो आप को अच्छी तरह से मालूम होगया होगा कि मूर्त्तिपूजा से कोई मत खाली नहीं। राजा साहिब ने कहा कि हे मतिमन्! मन्त्रिन्! यह बात सर्वदैव सत्य है, मुझको अच्छी तरह से निश्चय होगया है कि व्यर्थ ही दूसरे मन्त्री ने मेरा ख्याल बदला दिया था, परन्तु अब यह ख्याल 'कि मूर्त्ति हमें कुच्छ लाभ नहीं दे सक्ती' सत्य नहीं है। मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूं कि आप सन्मार्ग से भूले हुए मुझको अच्छे मार्ग पर लाए हैं, समय बहुत व्यतीत होगया है इसलिए सभामण्डल को आज्ञा है कि सब आदमी अपने २ घरों को जावें और सभा का विसर्जन किया जाए। रात्रि को जब राजा जी सोगए तो निद्रा में मूर्त्ति के ही स्वप्न

आने लगे और जब निद्रा मे जागे तो भी यह ख्याल था कि कब प्रातःकाल हो और मैं जिनेश्वरदेव जी महाराज की उपासना करूं। जब प्रातःकाल हुआ राजा जी निद्रा से विमुक्त हुए तो पुरीपोत्सर्ग से निवृत्त होकर और स्नानादि करके अष्टद्रव्य लेकर जिनेश्वरदेव की पूजा भक्ति में प्रवृत्त हुए।

सज्जन पुरुषो! इस दृष्टान्त के सुनने से आप को अच्छी तरह प्रतीत होगया होगा कि मूर्त्तिपूजा से कोई भी मत खाली नहीं है। राजा जिज्ञासु की तरह आप को आत्मा के कल्याण करने वाली जिनमूर्त्ति का पूजन करना चाहिए।

पाठक गणो! अब मैं अपने लेख को समाप्त करता हूं क्योंकि बुद्धिमानो को तो इतना ही कहना बहुत है, और साथ ही प्रार्थना करता हूं कि मेरा यह लेख किसी महाशय को न रुचे वा इस से किंचित् अप्रसन्नता हो, तो मै उनसे क्षमा चाहता हूं, यथोक्तंच

खामेमि सव्व जीवे सव्वे जीवा खमंतु मे
मित्तीमे सव्व भुएसु वेरं मज्झ न केणइ ॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

इति श्रीमद्विजयानन्दसूरिवर्य्याणां शिष्य श्रीमन्मःहोपाध्याय श्रीलक्ष्मीविजयानां शिष्य श्रीमद्विजयकमलसूरीश्वराणां शिष्यमुनिलब्धिविजयेन विरचितमिदं मूर्त्तिमंडन नाम पुस्तकं समाप्तिमगमत् ॥

मिलने के पते:--

(१) ज्वाहरलाल जैनी, सकन्दराबाद, यू. पी.

(२) श्रीआत्मानन्द पुस्तकप्रचारकमंडल, छोटा दरीबा, दिल्ली।

(३) श्रीआत्मानन्दजैनसभा, भावनगर।

(४) लाला नत्थूराम जैनी. जीरा जिला फिरोजपुर

(५) बाबू चैतनदासजैनी, मुलतान शहर।